सबला

सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली

वर्ष 6 : अंक 5 दिसंबर-जनवरी, 1994

सहयोग मंडल

कमला भसीन

मणिमाला

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

संपादिका

शारदा जैन

उप-संपादिका

वीणा शिवपुरी

जुही

चित्रांकन

बिंदिया थापर

वितरण

प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रैस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात	1
रास्ता चुन ही लिया (कविता) —फ्लेविया एगनिस	2
मशाल साक्षरता की —राष्ट्रीय साक्षरता मिशन	3
औरतों के हाथ में आई ताकत —वीणा शिवपुरी	7
हमारी साझी लड़ाई —जुही जैन	9
यौनिक हिंसा—सरकार और समाज का रवैया —मीता राधाकृष्णन	11
शमीम बानो के कुछ सवाल —शांति और माया	13
झुग्गी बस्ती में साक्षरता की गूंज —सुहास कुमार	15
जनसंख्या, पर्यावरण, विकास—नारीवादी नज़रिया —कमला भसीन	18
मुझे मत मारो! मैं डायन नहीं हूं —विशेष संवाददाता	21
कल (कविता) —कमला भसीन	22
एड्स—मुझसे बचना ही मेरा इलाज़ है	23
शरीर और स्वास्थ्य से मेरा संबंध —वीणा शिवपुरी	25
बेटियां मांगेंगी हिसाब (कविता) —सोहराब खां 'सवेरा'	27
नॉरप्लांट—यह आखिर है क्या	28
एक नया सवेरा —विशेष संवाददाता	30
पुलिस और हम —'मार्ग' से साभार	33
पाठकों की कलम से	36

हमारी बात

'सबला' की ओर से सभी पाठकों को नए साल की ढेरों बधाइयां। पुराना वर्ष बीता और शुरू हुआ हम औरतों के लिए संघर्ष का एक नया साल। गया समय चाहे जैसा भी बीता हो, पर जाते-जाते एक आस की किरण ज़रूर दिखा गया। जैसा कि हम सभी को मालूम है कि भंवरी बाई बलात्कार केस के सभी अभियुक्त खुले-आम घूम रहे थे। ग्यारसा गूजर और उसके चार साथियों ने उच्च न्यायालय में जमानत के लिए अर्जी दाखिल की थी। पर उच्च न्यायालय ने इस अर्जी को नामंजूर कर दिया।

न्यायाधीश जस्टिस टिबरवाल ने अपने फैसले में कहा—"भंवरी बलात्कार केस पूरी तरह से रंजिश और बदला लेने की भावना को साबित करता है। ग्यारसा गूजर ने भंवरी से बलात्कार अपनी ताक़त और सत्ता के बल पर किया। भंवरी ने आखा तीज पर रामकरन गूजर की नन्हीं बच्ची की शादी रुकवाई थी। इसलिए सजा के तौर पर गूजरों ने भंवरी बाई के साथ सामूहिक बलात्कार किया। गूजर समुदाय की ताक़त के डर से इलाके की पुलिस और गांववालों ने भंवरी का साथ नहीं दिया। इसलिए भंवरी को दूसरे गांव के लोगों से मदद मांगनी पड़ी। ऐसी स्थिति में भंवरी बाई ने अगर रपट एक दिन देर से लिखवाई तो वह कानूनी तौर पर देर नहीं मानी जाएगी। ग्यारसा गूजर और उसके चारों साथियों की जमानत नहीं हो सकती। उनकी तुरन्त गिरफ्तारी के वारंट जारी होने चाहिए।"

इस फैसले ने हमारी जीत में एक और कदम का इज़ाफा किया है। नए साल में हम अपने अधिकारों के संघर्ष को जारी रखने का वादा दोहराते हैं। अब हमारी कोशिश होगी कि अपराधियों की गिरफ्तारी जल्दी से जल्दी हो। साथ ही औरतों के खिलाफ होने वाली हिंसा की दूसरी वारदातों में भी हमें न्याय मिले।

अपना विरोध, अपनी एकता, अपना बहनचारा दिखाने के मौके मिलते हैं 'नारी मुक्ति संघर्ष' सम्मेलनों में। पिछला सम्मेलन (चौथा) 1991 में कालिकट में हुआ था। इन सम्मेलनों में हम एकजुट हो कर अपने विचार, खुशी, गम, रोष, ताक़त प्रदर्शित करती रही हैं। ऐसा ही एक मौका हमें पांचवें 'नारी मुक्ति संघर्ष' सम्मेलन, तिरुपति (दक्षिण भारत) में मिला।

आप और हम जैसी न जाने कितनी ही बहनों ने इसमें हिस्सा लिया और अपने-अपने खट्टे-मीठे अनुभव बांटे। पर हमारा काम यहीं खत्म नहीं हो जाता। जब हम इस दुनिया से निकल कर वापस समाज में आती हैं, तब शुरू होता है हमारा असली संघर्ष। इस समाज में अपनी बात लोगों के सामने रखना, अपनी पहचान बनाना, अपने हकों के लिए जूझना, यही तो है असली जागरूकता। जो बातें सम्मेलन में विचारों के रूप में सामने आती हैं उन्हें हम रोजमर्रा के जीवन में उतारने की कोशिश करती हैं। तभी मिलती है सच्ची मुक्ति।

नया साल हम सबके लिए खुशियां लाएगा, सपने पूरे करेगा, यही हमारी उम्मीद है और यही है विश्वास।

—जुही

रास्ता चुन ही लिया

थकी हुई तो भी आधे रास्ते पर रुक न पाएगी
सफर-सफर ही तो है मंज़िल तो नहीं
आगे तो जाना ही है
रास्ता चुन ही लिया तो पीछे मुड़कर देखती क्यों?
आज़ादी के ख्वाब में बार-बार ज़िंदगी की दिशा बदल ली
सयानी बनी है तो अभी एक कदम और उठाने से डरती क्यों?
घर की चार दीवारें तोड़कर खुली हवा में घूमी-फिरी
फिर नई दीवारें अपनाने से उदास क्यों?
नए समाज के देखे सपने हज़ार
संघर्ष जो भी किया सिर्फ़ यही कि ठुकराया हुआ जीवन
फिर बसाकर यही समाज में रही जीने को
समाज के मूल्यों को नए विचारों से अपनाया
यहीं समाज में स्थान लिया, मान पाया
पर डर था कि दोबारा कोई ठुकरा ना दे
फिर भी रास्ता चुन लिया तो पीछे मुड़कर देखती क्यों?
रास्ता शायद था ही गलत,
मंज़िल शायद है ही नहीं
नए अस्त्र चाहे बन न पाएं
नया रास्ता चाहे ढूंढ न पाए
फिर भी रास्ता चुन लिया तो पीछे मुड़कर देखती क्यों?

फ्लेविया एगनिस

शोषण से लड़ने की नई ताकत

मशाल साक्षरता की

चिकर में दूधिया बारिश हुई थी और टीक तथा बांस के सघन वन दोपहर के सूरज में चमक रहे थे। पेड़ों से भरी पहाड़ियों को धुंध भरे बादलों ने ढका हुआ था। मटमैला-मिट्टी भरा पानी नालों में बह रहा था और नालों में उगी घास-फूस पानी को रोक रही थी। कीचड़ से होकर जीप गुजर रही थी और खतरनाक हिचकोले खा रही थी। जैसे ही जीप वनों से निकल कर आगे बढ़ी, चमचमाते हुए हरे-भरे खेत दिखाई देने लगे।

झोंपड़ियां बिखरी हुई थीं और चमकीली हरियाली में धंसी हुई थीं।

टूटी-फूटी सड़क से होते हुए हम चिकर पहुंचे। अपनी बैठक के लिए हमें देर नहीं हुई थी। अभी भी लोग आ रहे थे। लोग एक-एक करके खेतों के पार से, वनों से निकल कर और खतरनाक ढलानों से होते हुए आ रहे थे। हमारा सभा स्थल का पिछवाड़ा और बरामदा भर चुका था और तब तक बरसात भी थम चुकी थी। जब सब लोग बैठ गए तब एक अजीब चुप्पी छा गई। लोग मुझे देख रहे थे—बहुत ही चौकन्ने हो कर। ऐसी चुप्पी थी कि अगर कोई पत्थर फेंकता तो हवा शीशे की तरह चटख जाती। यह डांग्स जिले के उन बीस गांवों में से एक था, जिसे उस समय जिला प्रशासन, खासकर वन विभाग और पुलिस के साथ हुई हिंसक झड़पों के कारण 'अशांत' घोषित किया हुआ था। उन भावुक भीलों को अतिवादियों ने विद्रोह के लिए उकसाया था, जो अपने इस परंपरागत विश्वास पर अटल हैं कि जंगलों पर केवल उनका अधिकार है जो कि सदियों से चला आया है।

मजबूत बल

साक्षरता का अपने आप में कोई मतलब नहीं होता। साक्षर होने का अर्थ यह नहीं है कि आपको खाना, घर या नौकरी मिल जाएगी। परंतु सामाजिक या आर्थिक या सांस्कृतिक आंदोलन के संदर्भ में सक्रिय होने पर यह एक मजबूत बल है। शोषण के खिलाफ रक्षा का एक हथियार है। साक्षरता रचनात्मक भागीदारी के लिए एक औजार है। यह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में और अधिक समान भागीदारी के लिए एक पुल है। अगर कोई व्यक्ति साक्षर है तो वह प्रश्न पूछ सकता है। सूचना तक उसकी पहुंच हो सकती है और वह यह जान सकता है कि क्यों और कैसे उसका शोषण किया गया है।

अनदभाई का अनुभव

सबसे पहले अनदभाई बोले, जो लिखना-पढ़ना सीख रहे थे। उन्होंने कहा, "मैं एक गरीब आदमी हूं। मेरे सपने छोटे हैं। मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं कि मैं किसी बड़े शहर में जाऊं, इसलिए कि मैं यहीं पैदा हुआ हूं। अगर आप डांग्स जैसे किसी स्थान पर पैदा हुए हों तो आप समझ सकते हैं कि इसका क्या मतलब होता है। ये वन, ये पहाड़ियां, ये आसमान, ये नदियां, ये झरने, ये प्यारी माटी, ये सब आप के जीवन का हिस्सा बन जाते हैं।

"इस कहानी का एक दूसरा हिस्सा भी है। अब वन हमारे नहीं रह गए हैं। हम यहां दुनिया के किनारे पर छायाओं की तरह रह रहे हैं। हमारा जीवन क्या है? एक संघर्ष। अपने हृदय और अपने मस्तिष्क से तो हम यहां के हैं, लेकिन हमारे शरीर एक युद्ध में झोंक दिये गए हैं। संघर्ष है कि जमीन को खोदो और ऐसा बनाओ कि उस पर खाद्यान्न उग सके। यह काफी नहीं है। हमें चीनी की फैक्टरियों में काम करने के लिए सूरत तक जाना पड़ता है। हम अपने कपड़े और कुछ अन्य चीजों को मुश्किल से कमा पाते हैं।

"मैं कठिन श्रम से नहीं डरता। पर उन लोगों के साथ मैं चल नहीं पाता। ये वे शिक्षित लोग हैं जो निरक्षर लोगों को मूर्ख समझते हैं। हम मूर्ख नहीं हैं। हम मनुष्य हैं और हमारी भी अपनी गरिमा है पर चूंकि हम निरक्षर हैं इसलिए हमारा जीवन कठिन है। चीनी फैक्टरियों के मालिक वेतन देने में हमें ठगते हैं। हम ऐसे लोग हैं जो बसों का नंबर तक नहीं पढ़ सकते।

"मैंने अपने हालात सुधारने के लिए साक्षर होना शुरू किया है। स्वयंसेवक मुझे मिला और उसने मुझे कक्षा में आने के लिए मनाया। लेकिन मैंने उससे पूछा, 'इससे मुझे फायदा क्या होगा? मैं इतना बूढ़ा हूं कि नहीं सीख सकता और फिर मेरे पास पढ़ने के लिए समय भी तो नहीं है। पढ़ते तो बच्चे हैं।' लेकिन उसने मुझे समझाया, 'सीखो', उसने कहा, 'इससे तुम और अधिक जानकारी प्राप्त करोगे। तब कोई तुम्हारा शोषण नहीं करेगा, तुम और अधिक शक्तिशाली होगे।'

"तो मैंने पढ़ना शुरू किया। अब मैं अपने जीवन में परिवर्तन को महसूस कर सकता हूं। मैं समझ सकता हूं कि मेरे हालात ऐसे क्यों हैं। यह मेरे लिए एक नई जागृति है। अब मैं अपने परिवार और पड़ोसियों से बात करता हूं। मैं उनसे कहता हूं, तुम भी साक्षर बनो। पढ़ना-लिखना सीखो।"

जुगरबेन ने पढ़ना-लिखना सीखा

सभा में चुप्पी छा गई—परेशान करने वाली चुप्पी। और फिर एक नवसाक्षर महिला, जुगरबेन पवार बोली, "मैं गरीब हो सकती हूं मगर मैं डरी हुई नहीं हूं। मेरा अपना स्वाभिमान है। मेरे पास भीलों की लंबी कहानी है। मेरी कहानी है जो यह बताती है कि जो लोग पहले अपनी जिंदगी के खुद मालिक थे, वे कैसे दूसरे लोगों के दास बन गए। मेरे पास विजय और पराजय की एक लंबी कथा है। मेरे पास इन जंगलों और इस धरती की कहानी है। अब मैं इस कहानी को अच्छी तरह समझती हूं। मुझे इसका अर्थ मालूम हो गया है।

मैं जानती हूं कि इस कहानी से मैं कुछ सीख सकती हूं। अब मैं केवल एक चेहरा और नाम नहीं हूं—जो जीएगा और मरेगा और भुला दिया जाएगा। मेरे पास आवाज है। मैं लड़ सकती हूं।

"मेरा जीवन बहुत कठिन रहा है। इस भूमि पर अनाज उगाने के लिए मैंने कड़ी मेहनत की है। रोजी कमाने के लिए मैं चीनी की फैक्टरी में काम करने दूर सूरत तक गई हूं। मैं अपनी जड़ों से कट गई हूं, एक शरणार्थी की तरह।

"एक दिन मेरे पति ने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे लिखना सिखाया। मैं भी औरों के साथ पढ़ना सीखने लगी। हर रात हम दिये की रोशनी में काम करते। हम छः या सात थे। मुझे याद है शुरू में लिखना सीखते वक्त मैं कितनी डरी हुई थी। यह आग को छूने के समान था। धीरे-धीरे मुझ में हिम्मत आयी और मैं पढ़ना, लिखना और गिनती सीखने लगी। ऐसा लगा जैसे आग को पकड़ लिया हो। लेकिन यह एक नई तरह की आग थी। ऐसी आग जो मुझे जलाएगी नहीं बल्कि ऐसी आग जो मुझे मजबूत बनाएगी। ऐसी चीज जो दूसरे लोगों के लिए मुझे प्रेरक बनाएगी। फिर मैंने जाना कि लिखना और पढ़ना और गिनती करना कई तरह से मेरी मदद कर सकते हैं। हम अपने आप सफर कर सकते हैं, खरीदारी कर सकते हैं और पैसे गिन सकते हैं। कोई मुझे बेवकूफ नहीं बना सकता। मुझे अंगूठा लगा कर अपने को हीन समझने की भी जरूरत नहीं रही। अब मैं दस्तखत कर सकती हूं। आप कभी नहीं समझ सकते कि इसका मेरे और मेरे लोगों के लिए क्या अर्थ है।"

मैं क्यों साक्षर बनाऊं?

"मैं किसी दूसरे को साक्षर क्यों बनाऊं?" मैंने अपने आप से पूछा, "यह तो समय बर्बाद करना है। मेरे पास करने के लिए कई महत्वपूर्ण काम हैं। मुझे अपने परिवार की परवरिश करनी है, मुझे खेतों में काम करना है। मेरे पास समय नहीं है।

"लेकिन फिर मैंने अपने चारों ओर देखा। मुझे क्या नजर आया? अत्याचार, पढ़े-लिखे प्रतिभाशाली लोग गरीब अनपढ़ लोगों पर जुल्म कर रहे थे," स्वयंसेवक देवजभाई कहते गए, "और ऐसा क्यों हो रहा था? सिर्फ इसलिए कि उन शिक्षित लोगों में पढ़ने-लिखने और नंबरों के बारे में सब कुछ सीख लेने की खास योग्यता थी। वे महत्वपूर्ण और उपयोगी जानकारी को अनपढ़ लोगों से दूर रख सकते थे। उनके पास अन्य लोगों की जिंदगी पर नियंत्रण रखने की ताकत थी। बहुधा वे इस ताकत का गलत इस्तेमाल करते थे।

"इसलिए मैंने सोचा कि शायद यह समय दूसरे लोगों को पढ़ाना शुरू करने का है। उन्हें जानकारी देनी होगी, उन्हें जगाना होगा ताकि वे जुल्म के शिकार होने से बच सकें। ताकि वे अपनी देखभाल कर सकें। ताकि वे आंख मूंद कर भरोसा करना छोड़ दें। ताकि वे शक्तिशाली बनें। ताकि वे भी उस सत्ता में हिस्सा बंटा सकें जो कुछ थोड़े से लोगों के पास है।

"मैंने अध्यापक से कहा, 'हां मैं स्वयंसेवक बनूंगा, इस तरह मैंने पढ़ाना शुरू किया। दिन भर मैं खेतों में काम करता और रात को लोगों को पढ़ाता।' मैं अब भी पढ़ाता हूं।

"कुछ समय तक पढ़ाने के बाद मुझे अहसास हुआ कि मैं अपनी पत्नी की उपेक्षा कर रहा हूं। वह भी तो अनपढ़ है। उसे भी शक्ति की जरूरत है, इसलिए मैंने उसे पढ़ाना शुरू किया। शुरू में उसे पढ़ने में संकोच होता था। इसलिए मैं उसे तब पढ़ाता था जब सब लोग सो जाते थे। हम लकड़ी का एक छोटा सा लट्ठा जला लेते और रात में काम करते। हम इतना थक जाते थे कि कभी-कभी हम सो जाते और लकड़ी का लट्ठा जल कर अंगारा बन जाता। जब सुबह की रोशनी घर में आती तब हमारी नींद खुलती। आखिर जब उसने पढ़ना सीख लिया तो मैंने उसमें आए परिवर्तन को देखा। औरों की तरह उसमें भी साहस आ गया था और वह अपनी बात कह सकती थी। चीनी की फैक्टरी से अपना वेतन लेते समय, दुकान से सामान खरीदते समय वह पैसे गिन सकती थी। यहां तक कि उसने तौलने के वजन (बाट) के बारे में भी सीख लिया था।

"हां, यह रोमांचक है। **मुझे विश्वास है कि साक्षरता से लोगों का जीवन बदल जाएगा।** जानते हैं अखबार पढ़ने का क्या मतलब है? इसका मतलब है बाहर की दुनिया के बारे में जानना। आज की दुनिया के बारे में खबरें पढ़ना, यह समझ पाना कि दूसरे लोग क्या महसूस करते हैं और कैसे रहते हैं। यह अहसास होना कि इन जंगलों और इस भूमि से परे भी जीवन है। यह सच जान लेना कि एक दिन इस धरती पर इतने ज्यादा लोग हो जाएंगे कि उनके लिए जगह बनाने के लिए इन वनों को भी समाप्त हो जाना होगा।"

अगर देश भर में चल रहा साक्षरता अभियान इन लोगों को इनकी ताकत को आवाज दे सके, विश्वास की भाषा दे सके, तो ऐसी गुणात्मक शक्ति पैदा होगी जो जीवन को बिल्कुल नया अर्थ दे देगी। यह ऐसी प्रक्रिया नहीं होगी जो लोककथाओं और पारंपरिक ज्ञान के भंडार को नष्ट करेगी बल्कि एक समुदाय को समझ कर उसे फलने-फूलने और विकसित होने में मदद करेगी। □

साभार : राष्ट्रीय साक्षरता मिशन

औरतों के हाथ में आई ताक़त : एक अनुभव

वीणा शिवपुरी

सन् 1990 के महाराष्ट्र सरकार के अधिनियम के तहत सभी स्थानीय स्वशासी निकायों में तीस प्रतिशत जगहें औरतों के लिए आरक्षित करना ज़रूरी माना गया। चूंकि अब तक औरतें सामाजिक और राजनीतिक रूप से पिछड़ी रही हैं, यह आवश्यक समझा गया कि उनके पक्ष में कानून बनाए जाएं। परिणाम स्वरूप अनेक गांव पंचायतों में औरतें सक्रिय दिखलाई पड़ने लगीं। कुछ पंचायतें तो पूरी तरह से महिला पंचायतें बनीं। पहली बार कानूनी तौर पर औरतों के हाथ में अधिकार आए। यह सभी के लिए एक उत्साहवर्धक बात थी।

एक अध्ययन

पुणे की एक महिला संस्था ''आलोचना'' की दो सदस्यों ने औरतों की ताकतमंदी के इस प्रयोग के बारे में अध्ययन किया। मेधा और सिमरित ने अपने अध्ययन की रिपोर्ट एक महिला सम्मेलन में पेश की। उन्होंने दो पूर्ण रूप से महिला पंचायतों तथा बंबई और पुणे के नगर निगमों में औरतों की भागीदारी को अपने अध्ययन का केंद्र बनाया।

उभर कर आई कुछ बातें

— सबसे पहली बात तो यह देखी गई कि गांव की पंचायतों में औरतों की मौजूदगी का ज्यादा अच्छा असर पड़ा है। बंबई और पुणे जैसे शहरों के नगर निगमों में औरतों की मौजूदगी से कोई अच्छे बदलाव नहीं आए। मेधा और सिमरिता का कहना है कि इसका कारण गांव का अनौपचारिक व मेल मिलाप का वातावरण है। शहरों में राजनीति का अपराधीकरण भी हुआ है जिसकी वजह से औरतें इस होड़ में पिछड़ जाती हैं।

— गांवों के स्तर पर अब विकास के रुख में बदलाव आया है। औरतों की रोजमर्रा की ज़रूरतों और समस्याओं की तरफ ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। जैसे साफ़ पीने का पानी, समुचित स्वास्थ्य सेवाएं आदि मुहैया कराना औरतों का पहला मुद्दा बन गया है।

— एक और बात देखी गई कि औरतों ने राजनीतिक पार्टियों की चालाकी को समझते हुए उन्हें अपने फायदे के लिए इस्तेमाल किया और सरकार से अपने गांव के लिए धन आवंटित कराया।

— हालांकि इन पंचायतों में काम करने वाली ज्यादातर औरतें खुद निरक्षर हैं लेकिन इन्होंने

गांव के स्कूलों पर पूरा ध्यान दिया। अब अध्यापक अपना पूरा काम करते हैं और बच्चे भी नियमित रूप से स्कूल जाते हैं।

— गांवों में चलने वाले जुए के अड्डों को बंद कराना और शराब खोरी पर रोक लगाना जैसे क़दम भी उठाए गए हैं।

— इस तरह सामने नज़र आने वाले बदलावों के अलावा एक ऐसा बदलाव आया है जो महसूस किया जा सकता है। **गांव की सभी औरतों में एक नया आत्मविश्वास जागा है। उन्हें अपने महत्व का अहसास पैदा हुआ है।**

— सीटों के आरक्षण की इस नीति से यह भी पता चला है कि जब औरतों की संख्या बढ़ती है तो उनकी सामूहिक ताक़त भी बढ़ती है। सिर्फ़ एक या दो औरतें होने पर उनकी आवाज़ दबा दी जाती है। तब उनकी मौजूदगी सिर्फ़ नाम के वास्ते रह जाती है।

औरतें मुख्य धारा से जुड़ें

इन गांवों में आए बदलावों पर रोशनी डालने के साथ मेधा व सिमरिता ने भारत के नारी आंदोलन पर एक खास जिम्मेदारी डाली है। उनका कहना है कि अब तक नारी आंदोलन देश की सक्रिय राजनीति और चुनावी प्रक्रिया से अलग रहा है। महिला संगठनों ने भी जानबूझ कर अपने आपको राजनीतिक पार्टियों से दूर रखा है। अब ऐसा महसूस किया जा रहा है कि नारी आंदोलन से जुड़ी औरतों को राजनीति में आना चाहिए। यदि देश की विकास नीतियों तथा औरतों के अन्य मुद्दों के क्षेत्र में कुछ ठोस फ़ायदे चाहिए तो उन्हें असंवेदनशील लोगों पर नहीं छोड़ा जा सकता। आज तक औरतें सिर्फ़ मांगती आई हैं, अब उन्हें खुद सत्ता और अधिकार अपने हाथ में लेने चाहिए। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सत्ता पाने का रास्ता चुनावी प्रक्रिया है।

यह तो हमने देख ही लिया कि औरतों की बढ़ी हुई संख्या प्रभावकारी साबित होती है। राजनीति और सरकार में भी जितनी ज्यादा औरतें आएंगी उसका अच्छा असर पड़ेगा। आज तक राजनीतिक क्षेत्र में जो औरतें आई भी हैं वे किसी न किसी नेता की बहन, पत्नी या बेटी होने की वजह से। अब ज़रूरत है स्वतंत्र, सशक्त, नारीवादी महिलाओं की जो अपने बलबूते पर इस अखाड़े में उतरें। □

अपील

भंवरी भटेरी केस के लिए न्याय की लड़ाई अब अदालत तक पहुंच चुकी है। इसके लिए सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्तर पर निरंतर संपर्क बनाए रखने, कोर्ट की दिन प्रतिदिन की कार्यवाही और संबंधित लोगों तक सूचनाओं को पहुंचाने में काफी खर्च हो रहा है।

अतः आपसे निवेदन है कि केस को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने में अपनी सामर्थ्य के अनुसार वित्तीय सहयोग प्रदान करें।

आप अपनी सहयोग राशि अपनी इच्छानुसार चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर के द्वारा इस पते पर भेज सकते हैं—

भंवरी सहायता कोष
श्रीमती रेणुका पामेचा
द्वारा सुश्री हेमलता प्रभु
बी-118, मंगल मार्ग
बापू नगर, जयपुर-302015

जुही जैन

उसका जन्म पश्चिम घाट के घने जंगलों में हुआ था। केरल के वयनाड़ ज़िले के थ्रिसल्लरी गांव में। वह स्कूल तो बहुत जाना चाहती थी। चाहती थी अपनी उमर की दूसरी बच्चियों की तरह बढ़िया कपड़े पहने, बस्ता लेकर, बग्गी में सवार होकर पाठशाला जाए। गिटपिट अंग्रेज़ी बोले। पर यह कैसे संभव हो पाता। उसका परिवार बहुत ही गरीब था। बाप अडियर समुदाय से था जो कि इलाके की सबसे पिछड़ी आदिवासी जाति थी। उसे एक दिन की मज़दूरी मिलती थी एक किलो धान। फिर वह बेटी के सपने कैसे पूरे कर पाता।

पर उसने अपने सपने पूरे किए। और आज वह हमारे देश की पहली आदिवासी औरत है जो देश की पहली आदिवासी संस्था चलाती है। उसका नाम है सी. के. जानू।

अपमान भरा जीवन

''मेरा बचपन बहुत गरीबी और दुख में बीता। मैं अडियार आदिवासी समुदाय में पैदा हुई थी। इस समुदाय के सभी लोग बंधुआ मज़दूर थे। आदिवासी जाति के लोगों को दासों से भी गया-गुज़रा जीवन बिताना पड़ता था। ज़मींदार हम आदिवासियों को एक साल काम कराने के लिए पचास पैसे या एक रुपए में खरीद लेते थे। इंसानों की यह खरीद-फरोख्त वल्लीयूरक्वू मंदिर के उत्सव में कबानी नदी के घाट पर होती थी।

ऐसे ही उत्सव में मेरे पिता को भी पचास पैसे में बेचा गया था। पिता के साथ हम सब भाई-बहनों को भी बंधुआ मज़दूरी करनी पड़ती थी। जमींदार मेरे पिता को मज़दूरी के बदले कुछ धान दिया करता था। उसी में हम सबको अपना गुज़ारा करना होता था। बरसात के दिनों में तो और मुश्किल थी। उन दिनों हमें अक्सर भूखे रहना पड़ता था।

हम बंधुआ दासों का जीवन नर्क था। जमींदार हमसे काम करवाते और बदले में हमें देते मार और गालियां। खुद तो वह घी-दूध पीते और हमें पीने को चावल का माड़ भी नहीं था। वे आलीशान पक्के मकानों में रहते और हम टूटी फूस की झुग्गी में। हम तंग आ गए थे इस शोषण और अपमान से। इसलिए हमने बगावत की। हां, हमारे हकों के संघर्ष को सब बगावत ही कहते हैं।

बगावत या संघर्ष

हमारे संघर्ष की शुरुआत 1991 में हुई। तब तक मैं ज़मींदारों के खेत में बाईस रुपए रोज़ पर मज़दूरी करती थी। सरकारी कानून की वजह से हमें बाईस रुपए रोज़ मज़दूरी के मिलने लगे थे। पर इज्जत थोड़ी ही सरकारी कानून से मिलती है। उसके लिए तो जंग करनी पड़ती है। अपमान सहना पड़ता है। तभी तो खून में उबाल आता है। तभी तो हम तैयार होते हैं अपना जीवन सुधारने को।

जमींदारों, सरकारी मुलाज़िमों के अत्याचारों से तंग आकर ही हम लोग एकजुट हो पाए हैं। जब

हमें पहली बार अहसास हुआ कि हम भी इंसान हैं, तभी हम पांच आदिवासी लोगों ने मिलकर आदिवासी संगठन बनाया। इस संगठन का 1993 में पुनः नामकरण हुआ 'आदिवासी विकास समिति'। आज इस संगठन में पांच हज़ार सदस्य हैं। इलाके की दूसरी आदिवासी जातियां जैसे कुराचिया, कटुनैकर और पनियार भी शामिल हैं।

संगठन की शुरुआत ज़मींदारों को रास नहीं आई। हमें काम मिलना बंद हो गया। हमारे घर-परिवार बिखरने लगे। बच्चे भूखों मरने लगे। पर हमने हिम्मत नहीं छोड़ी। अपना संघर्ष जारी रखा। बंधुआ मज़दूरी करने से मना कर दिया। कम मज़दूरी पर काम पर जाने से एक दूसरे को रोका।

ज़मीन का अधिकार

हमारा सबसे पहला बड़ा संघर्ष था अपनी खोई जमीनें वापस लेने का। हम लोगों के पास तो मुर्दों को गाड़ने के लिए ज़मीन भी नहीं थी। वह भी हमें जमींदारों से मांगनी पड़ती थी। बदले में हम मुफ्त काम करते, महीनों, सालों।

अपनी ज़मीन वापस लेने के लिए हमने मिलकर कलक्टर के दफ्तर के चारों ओर घेरा डाला। हमने कलपट्टा के सरकारी दफ्तरों का भी मोर्चा-बंद किया। हम ने मांग रखी कि हमारी ज़मीनें हमें वापस कर दी जाएं। हमारे इलाके में हरेक परिवार को आधा एकड़ ज़मीन मिली है। कुछ परिवारों को तो यह भी नहीं मिली है। हमारा संघर्ष अभी जारी है। जब तक हम वो सभी ज़मीनें वापस नहीं ले लेंगे जो सरकार ने सीलिंग अधिनियम के तहत ज़बर्दस्ती ले ली थीं, हम चैन से नहीं बैठेंगे। हम इन्हीं के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अभी कुछ दिनों पहले ही हमने मनन्थावाड़ी में मोर्चा निकाला था। पर पुलिस ने हमारे उन्नीस साथियों को गिरफ्तार कर लिया।

हमारी अपनी आज़ादी के लिए

हमारी दूसरी लड़ाई है हम औरतों के लिए। आदिवासी मर्द और औरतें दोनों दबे हैं जमींदारों के अत्याचारों तले। और हम औरतें दबी हैं मर्दों के हुकुम तले। हमारे समुदाय में रिवाज़ है कि मर्द जिस औरत से शादी करना चाहता है, उसके भरण-पोषण का सारा खर्चा वह उठाता है। सगाई होने के बाद वह औरत घर से बाहर नहीं निकलती है।

अपने समाज में मैं पहली औरत हूं जो पास के इलाकों में जा पाई हूं। मैंने अभी कुछ दिनों पहले पूना, बंगलौर और दिल्ली का भी दौरा किया है। मैं चाहती हूं कि मेरी तरह मेरे समाज की दूसरी औरतें भी चार-दीवारी से बाहर निकलें। अपने अंदर छिपी ताकत को पहचानें और अपने हालात बदलने के लिए काम करें। मैंने अब उनके साथ काम शुरू किया है। उन्हें थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना भी सिखाना शुरू किया है। मुझे पूरा भरोसा है कि मैं अपने काम में सफल हो जाऊंगी।

जानू को पूरा विश्वास है खुद पर। अपने साथियों पर। उसमें और उसके साथियों में ताकत है इरादों की। और इस ताकत के सहारे वे अपनी लड़ाई में जरूर सफल होंगी। □

यौनिक हिंसा
सरकार और समाज का रवैया

मीता राधाकृष्णन

बलात्कार औरत पर होने वाली तमाम हिंसाओं में से एक है। इससे हमारे तन और मन पर चोट लगती है। क्या मारपीट, छेड़छाड़ और अन्य हिंसा से यह नहीं होता? पर चूंकि बलात्कार के साथ हमारी इज़्ज़त का मसला जुड़ा है, इसलिए इसे हमारे खिलाफ़ हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए ज़रूरत है बलात्कार को लेकर रवैया बदलने की। सिर्फ़ इज़्ज़त का मसला न मानकर इसे औरत पर होने वाली हिंसा के बड़े दायरे में देखना होगा। इससे पुरुष वर्ग इसका डर दिखा कर हम पर हुकूमत नहीं कर पाएगा। अगर हम सोचेंगे क्या हुआ अगर बलात्कार हुआ, तो पितृसत्ता को चोट पहुंचेगी। मतलब यह नहीं कि मुजरिमों को खुली छूट मिले या कोर्ट उनकी सज़ा कम करने का हक हासिल करे। बल्कि इससे उबर कर हम इसके खिलाफ़ संघर्ष की नई ताकत पैदा करें और थोड़ा और चैन से जी पाएं।

इस लेख के माध्यम से हम अपने कुछ सवाल और विचार आपके सामने रख रहे हैं। ये सवाल मन में सुलग तो न जाने कब से रहे थे। पर सामने आए भंवरी बलात्कार केस के दौरान हिंसा विरोधी अभियान में और इनके साथ व्यक्तिगत जीवन में हिंसा के खिलाफ़ संघर्ष के दौरान।

सवाल एक: न्याय क्या है?

सबसे पहला सवाल है, हम औरतों के लिए हिंसा क्या मायने रखती है। हमारे लिए न्याय का क्या मतलब है? भंवरी साथिन के लिए न्याय का

अर्थ हो गया बलात्कारियों के लिए एक दिन की जेल। भंवरी ने सोचा, इससे गांव वाले उसका विश्वास कर पाएंगे और उसके साथ हो जाएंगे। पर भंवरी और उसके जैसी अनेक औरतों ने इस न्याय को पाने के लिए सरकार और अदालत का दरवाजा क्यों खटखटाया?

ग्यारसा गूजर को सरकार ने महिला समूहों के दवाब में आकर हिरासत में ले लिया। यह बात दूसरी थी कि वह अस्पताल में था और दूसरे खुले-आम घूम रहे थे। गूजर की भी जमानत हो गई। साथ ही दूसरे अभियुक्तों की भी जमानत गिरफ्तार होने से पहले ही हो गई थी।

दूसरा केस है जिसमे सर्वोच्च न्यायालय ने दो बलात्कारियों की सजा सात साल से घटा कर तीन साल कर दी। दोनों को यह सजा कर्नाटक उच्च न्यायालय ने दी थी। उनका अपराध था कि उन्होंने चाकू दिखाकर एक औरत की जबर्दस्ती इज्जत लूटी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि जुर्म के समय दोनों लड़के 'कच्ची' उम्र के थे। उन पर वासना का भूत सवार था। दूसरे,

वह औरत उनके कमरे में अपनी मर्ज़ी से आई थी। इन दोनों ने पंद्रह साल तक चलने वाली कानूनी कार्यवाही में जो "मानसिक यातना" झेली वह भी एक तरह की सज़ा ही थी। इन न्याय के ठेकेदारों के लिए औरत की यातना कोई मायने नहीं रखती।

जब बलात्कार की वारदात के बाद औरत कचहरी में पेश होती है तो कदम-कदम पर उसके चरित्र पर सवाल उठाए जाते हैं। केस के फैसले में बरसों लग जाते हैं। और जब फैसला होता है तो सामने आता है न्याय का पितृसत्तात्मक रवैया। वह मर्द की तरफदारी करता है। कोर्ट को औरत के मानवीय अधिकारों के हनन से कोई सरोकार नहीं। उसको सरोकार है औरत की इज्ज़त से, औरत की यौनिकता पर मर्द के अधिकार के सवाल से। इतना सब जानने-समझने के बावजूद हम 'फैसला' कराने कचहरी में जाते हैं। सवाल है कि हम ऐसा क्यों करते हैं जबकि हम जानते हैं कि कानून का रुझान हमारे खिलाफ होगा।

सवाल दोः बलात्कार क्यों होते हैं?

हमारा दूसरा सवाल है, बलात्कार क्यों होते हैं? हमारे समाज में इसकी क्या जगह है? इसका जवाब जानने के लिए हमें समाज में औरतों पर होने वाली हिंसा के विभिन्न रूपों को देखना होगा। बलात्कार तो तमाम हिंसाओं का सिर्फ एक रूप है। यौन अत्याचार, मारपीट, पत्नी प्रताड़ना, बाल-विवाह, दहेज, बेरुखी, भेदभाव, गरीबी, सती, शादी में बलात्कार, सांप्रदायिक हिंसा, पुलिस, जवान और अस्पतालों में हिंसा और मानसिक हिंसा भी तो औरत पर होने वाली हिंसा के ही रूप हैं। फिर जब हिंसा के इतने सारे रूप सामने हैं तो बलात्कार को इतना महत्व क्यों? शायद इसलिए कि बलात्कार जुड़ा है 'इज्ज़त' के सवाल से। और बलात्कार इन सभी तरह की हिंसा के सहारे बिना नहीं हो पाते।

हिंसा और डर के इस ढांचे को कायम रखने के लिए समाज सहारा लेता है भौतिक ताकतों का। साथ ही सहारा लिया जाता है विचारधारा का—जिससे औरत या तो उस ढांचे में एक मोहरा बन जाती है या सभी शर्तों को मान हालात से समझौता कर लेती है। विचारधारा के इस नियंत्रण के बगैर भौतिक ताकतें बेअसर हो जाती हैं। इसलिए औरत को विश्वास दिला दिया जाता है कि इस शोषण से बचने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कभी-कभी औरतों को भड़का कर उन्हें एक-दूसरे के खिलाफ़ इस्तेमाल किया जाता है।

औरतों पर होने वाली हर हिंसा यौनिक नहीं होती। पर यौनिक हिंसा की अपनी एक अलग अहमियत होती है। यह अहमियत इसे मिलती है समाज से। यौनिक हिंसा को हथियार के रूप में इस्तेमाल करके औरत पर काबू रखा जा सकता है। उसके वजूद पर पुरुष की ताकत आजमाने का नुस्खा है। हमें सिखाया जाता है कि हमारी सबसे कीमती चीज़ है 'इज्ज़त'। और यौनिक हिंसा से इस 'इज्जत' पर चोट की जाती है।

यौनिक हिंसा से अल्पसंख्यक जाति/समुदाय को भी अधीन रखा जाता है। जाति और समुदाय की लड़ाइयों में औरतों के साथ बलात्कार किया जाता है। चूंकि समुदाय की इज्ज़त होती है औरतें। इस इज्ज़त पर हमला करके ताकतवर समूह अल्पसंख्यकों पर अपना अधिकार जमा लेता है।

तीस साल की शमीम बानो दिल्ली की एक पुनर्वास बस्ती, सुभाष कैंप में रहती है। पंद्रह गज की झुग्गी में बिताए पंद्रह साल। और इन्हीं सालों में आए इतने तूफान—एक ही बेटी पैदा हुई। पड़ोस के तानों से बेटे की उम्मीद सुलगती रही। पर यह आस पूरी नहीं हुई। पति गुज़र गया। शमीम बानो ने फैसला लिया, ''एक ही बेटी के सहारे ज़िंदगी निकाल दूंगी। दूसरा पति नहीं करूंगी।''

इन सवालों के जवाब क्या हैं?

क्या हम इस ''इज्ज़त'' की परिभाषा नहीं बदल सकते। अगर हम यौनिक हिंसा पर अपना नज़रिया बदल लें और मान लें कि बलात्कार भी किसी और हिंसा की तरह है, तो हमें यौनिक हिंसा के डर के साए तले नहीं जीना होगा। साथ ही समाज के इस पितृसत्तात्मक ढांचे को चोट पहुंचेगी। यह मानने पर कि बलात्कार हम पर होने वाली तमाम हिंसा में से एक है, हम इज्ज़त को छोड़कर पूरे समाज को बदलने की कोशिश करेंगे।

हम जानते है कि औरत पर होने वाली हिंसा पितृसत्तात्मक समाज का हथियार है। जब तक हिंसा को जड़ से नहीं उखाड़ फेंकेंगे, तब तक समाज का ढांचा नहीं बदल सकते। धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता, राजनीतिक गुंडागर्दी, जातीय भेदभाव और सरकार की योजनाओं ने इस हिंसा के हाथ और मजबूत किए हैं। इसलिए हिंसा पर हमारी लड़ाई समाज के भेदभाव के ढांचे को बदलने का हिस्सा है। इसलिए लड़ाई में हमें सिर्फ़ इस भेदभाव के खिलाफ़ ही नहीं, बल्कि उतने ही जोर से अधीनता की विचारधारा के साथ भी जूझना होगा। □

मीता के लेख का अनुवाद किया जुही ने

शमीम बानो के कुछ सवाल

शांति और माया

तूफानों में घिरी ज़िंदगी

बेटी को पाल-पोस कर बड़ा किया। अपनी खुद की कमाई से बेटी का निकाह किया। बहुत उम्मीद थी शमीम को इस शादी से। दामाद से मानो बेटे की सारी कमी पूरी करनी थी। पर शमीम के जीवन में वक्त नहीं बदला। दामाद भी उसे पापी ही मिला। बेटी रुकय्या की शादी को महीना भी नहीं बीता था कि वह शराब पीकर मारपीट करने लगा। शमीम का मन तड़प उठा। अपनी बेटी का हाथ इसलिए तो आदमी के हाथ नहीं दिया कि वह भूखी-प्यासी पिटती रहे। वह गुस्से में फुफकारती बेटी के घर पहुंच गई।

मन में लिए इकलौती औलाद के सुख की मनसा। साथ ही समाज का डर कि आप अकेली है तो बेटी को अलग करना चाहती है। यही सोच कर दामाद और बेटी को कुछ दिनों के लिए अपने

साथ ले आई। और दामाद, गुड़ की तरह मीठा बनता रहा। शमीम को एक झूठमूठ का विश्वास दामाद पर होने लगा। सुख के दिनों की आस फिर बंधने लगी।

आखीरी आस भी टूटी

एक शाम ऐसी आई कि दामाद ने अपनी सास को चाय का कप पकड़ाते हुए कहा, ''अम्मा बहुत थकी हो, चाय पी लो।'' शमीम ने दो घूंट चाय पी ही थी कि उसे नशा सा आने लगा। दामाद को लगा चाय में मिलाई नशीली दवा का असर हो गया। वह अपनी असली पहचान में आ गया। सास का बलात्कार करने के इरादे से उस पर झपट पड़ा। मगर शमीम ने अपने नशीले ढीले हाथ-पैरों से लड़ने की कोशिश की और चीखने चिल्लाने लगी। शोर सुनकर उसकी बेटी और पड़ोसी इकट्ठे हो गए। तब तक वह जुल्मी भाग गया।

कुछ दिनों बाद वह चाकू दिखाता हुआ, सारी गली में धमकी देता न जाने कहां गायब हो गया। शमीम ने उसी रोज थाने में रिपोर्ट दर्ज़ करा दी। मां-बेटी की जान को खतरा बन गया। रुकय्या ने तब तय किया, ''मैं नौकरी करूंगी। तलाक और गुज़ारे भत्ते की मांग करके बच्चों को पाल लूंगी।''

डर भरा जीवन

मां-बेटी नौकरी खोजने या वकील करने अब स्कूटर में ही जाते। मां साये की तरह बेटी के साथ रहती। ''वो जल्लाद कुछ भी कर सकता है। मैं अपनी गली और झुग्गी के बाहर कैसे उससे लड़ लेती।'' और यूं बच्चों की हारी-बीमारी, रोज के खाने पीने, आने-जाने में कर्ज़ा बढ़ता जा रहा था।

साथ-साथ बढ़ रही थीं दामाद की धमकियां। कभी कोई आकर कहता, ''गली के मोड़ पर चाकू लिए देखा था।'' कभी रिश्तेदार बताते ''कहता था, मैं देख लूंगा।'' शमीम का मन यह सुनकर बेचैन हो जाता। रुकय्या समझाती, ''जो गरजते हैं वो बरसते नहीं।''

इस डर-अडर, विश्वास-अविश्वास में झूलते कुछ दिन बीत गए। शमीम ने सोचा, ''यूं कब तक चलेगा। दिन दिहाड़े कैसे हिम्मत होगी मारने की। दस कदम की ही तो बात है। सौदा लेकर आती हूं।''

रुकय्या चावल बीन रही थी। उसका तीन साल का बेटा कंधे पर खड़ा जिद कर रहा था। गोद में लड़की पड़ी थी। और शमीम बानो अपनी चौखट से कुछ कदम ही आगे गई थी कि बच्चों की चीखें सुनकर उल्टे पैर भागी आई।

झुग्गी का गोबर-लिपा फर्श खून से सराबोर था। रुकय्या अभी चावल बीनती, बेटे को डांटती लहूलुहान एक ओर पड़ी थी। दोनों बच्चे बिलख-बिलख कर कह रहे थे, ''पापा ने मारा है।'' और शमीम की चीखें, वो तो कलेजे में ही समा गईं।

क्या करूं? कहां जाऊं?

इस हादसे के हफ्ते बाद जब हमें इस घटना की खबर मिली, तो हम शमीम से मिले। उसका सूखा मन उसके सूखे नयन और होठों में झलक रहा था। गम और आक्रोश की तीखी चुभन की कड़वाहट में वह बोली, ''अब खून के बदले खून वाली सज़ा तो रही नहीं। वह आकर मुझे मारेगा। आज बंद है, कल आजाद हो जाएगा। कानून वाले कहते हैं अपनों के नहीं, किसी और के बयान चाहिएं। वो कहां से लाऊं? अब हमारे पास न तो आदमी हैं, न पैसा, कौन सुनेगा मेरी? लड़की के दो बच्चे देखूं या कमाने जाऊं? क्या खिलाऊं?''

शमीम बानो के इन सवालों का क्या जवाब है हमारे पास? कौन सी आस के सहारे हम उससे कहें, तुझे न्याय मिलेगा? और क्या हम वाकई मानते हैं कि शमीम बानो को न्याय मिल पाएगा? शायद नहीं? फिर भी हम हमेशा इंसाफ मांगने जाते हैं इसी गूंगी-बहरी न्याय व्यवस्था के पास। तो और क्या रास्ते हैं हमारे पास शमीम बानो के लिए। उसके जैसी तमाम औरतों के लिए। हमारे खुद के लिए। □

झुग्गी बस्ती में साक्षरता की गूंज
नवसाक्षर बहनों के सुखद अनुभव

सुहास कुमार

अरब सागर और हिंद-महासागर के संगम के किनारे बसे केरल राज्य से 1989 में चली साक्षरता की लहर आज देश के कोने-कोने में फैल गई है। भारत का कोई भी राज्य इससे अछूता नहीं रहा है। 26 जनवरी 1989 को केरल के इरनाकुलम ज़िले में पूर्ण-साक्षरता अभियान चलाया गया और दिसंबर '89 तक वहां 95 फी सदी लोग साक्षर बन गए। इससे प्रेरणा पाकर बहुत से गांवों व शहरी बस्तियों में प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम चलाए गए। कमोबेशी इस कार्यक्रम के तहत् काफी लोगों ने पढ़ना-लिखना सीखा है।

अनेक जगहों के आंकड़े सामने रखे गए हैं। इन आंकड़ों के पीछे असलियत क्या है? कुछ गिने चुने लोगों की सफलता की कहानियां भी प्रकाशित की गई हैं। पर आम लोगों के जीवन या सोच में क्या कुछ बदलाव आया है?

इज़्ज़त बढ़ी

38 साल की मालती नई दिल्ली की मदनगीर पुनर्वास बस्ती में रहती है। 17 व 12 साल के दो लड़के व 8 साल की एक लड़की है। सिलाई कढ़ाई का काम पीस-रेट पर करती है। पति मैकेनिक है। सभी बच्चे थोड़ा बहुत पढ़े हैं। पढ़ना-लिखना सीखने के पहले भी थोड़ा बहुत घर से बाहर निकलती थीं। बस्ती में पानी व गंदगी आदि की समस्या आने पर औरों का साथ देती थीं। पढ़ना-लिखना आ जाने से ज़िंदगी में खास फर्क नहीं पड़ा, पर मन में अच्छा महसूस करती हैं। बच्चों को भी अच्छा लगता है कि अम्मा भी पढ़ लिख सकती हैं।

50 साल से कुछ ऊपर की चमेली भी मदनगीर की रहने वाली है। सबसे बड़ा लड़का 28 साल का है। बड़ी लड़की 31 साल की। बाकी तीनों बच्चों की उम्र 22, 20 व 19 साल है। सभी अनपढ़ हैं। पढ़ना-लिखना आ जाने से चमेली अपने अंदर बदलाव महसूस करती है। उन्हें पढ़ने

का महत्व समझ में आने लगा है। उन्हें लगता है कि पढ़ना-लिखना सबको आना चाहिए। ''पढ़ना-लिखना आने पर ही हम अपनी बात ठीक से कह सकते हैं और तभी लोग सुनते भी हैं। गलत चीज़ के लिए लड़ भी सकते हैं। घर में व बाहर पहले से ज़्यादा मान व इज्ज़त मिलती है।''

आत्मविश्वास जगा

''शुरू में जब क्लास में पढ़ने के लिए जाते थे तो बच्चे हंसते थे। अब उन्हें लगता है कि अम्मा पढ़ गई, हमें भी ज़रूर पढ़ना चाहिए। पढ़ना इतना अच्छा लगा कि बीमारी में भी क्लास में चले जाते थे।''

बड़े लड़के व तीनों लड़कियों की शादी हो गई है। मैंने पूछा, ''बहू को पढ़ने नहीं भेजती हो?'' बोली, ''तीन महीने से वह मायके में है। लड़के बहू में कुछ झगड़ा हुआ। लड़के ने उसे पीट दिया। अब बहू का बाप उसे भेज नहीं रहा है।''

मैंने पूछा, ''तुमने रोका नहीं?'' बोलीं, ''उसने तो सड़क पर मारा, मुझे इसका और भी मलाल है। आजकल मेरा रोज़ उससे झगड़ा होता है कि बहू को जाकर ले आ। मुझे लगता है वह पढ़ा लिखा होता तो ऐसा क्यों करता।''

45 साल की भगवानी देवी दक्षिण पुरी की रहने वाली है। उनका कहना है कि अब वे पैकेट पर लिखे दाम पढ़ लेती हैं। दुकानदार उन्हें बेवकूफ नहीं बना सकता। यह पूछने पर कि आपके पढ़ लिख जाने से क्या घरवालों का रुख कुछ बदला है, बोली, ''नहीं, कोई खास नहीं बदला है। सब यही कहते हैं इस उम्र में पढ़ने का क्या फायदा? क्या कोई नौकरी मिल जाएगी। यह तो ज़रूर लगता है कि पहले पढ़ लिख जाते तो अच्छा था। अब घर के काम-काज से फुर्सत ही नहीं मिलती है। चाहते हुए भी पढ़ने में ज्यादा टेम (समय) नहीं दे पाते हैं। साक्षरता अभियान बहुत अच्छा लगा। हम जैसी औरतें भी पढ़ना-लिखना सीख सकीं।''

23 साल की शकुंतला ने, जो एक 5 साल के बच्चे की मां है अभियान में पढ़ना-लिखना सीखा। घरवाला 8वीं तक पढ़ा है। शकुंतला को पढ़ना-लिखना बहुत अच्छा लग रहा है। आदमी भी खुश है। इन्हें अब चिट्ठी पढ़ने व लिखवाने को दूसरे का मुंह नहीं देखना पड़ेगा। इनको लगता है इनका भविष्य सुधर जाएगा। पूछने पर कि क्या आगे भी पढ़ना चाहेंगी, बोलीं ''मौका मिला तो ज़रूर पढ़ूंगी।''

सोच-समझ बढ़ी

दो साल से साक्षरता अभियान से जुड़े रहने के कारण बहनों से बातचीत के अवसर मिले हैं। उन्हें बहुत नज़दीक से देखने परखने का मौका मिला है। यह कहना अन्याय होगा कि साक्षरता अभियान ने उनको छुआ नहीं है। बस्ती की बहनों की सोच का दायरा बढ़ा है।

जब वे पहले पढ़ने गईं तो यही सोचती थीं कि चिट्ठी लिख-पढ़ सकेंगी। राशन व अन्य दूकानदार उनसे ग़लत दाम नहीं लेगा। बस का नंबर खुद पढ़ लेंगी। लेकिन धीरे-धीरे उनकी न केवल पढ़ने में रुचि बढ़ी, उन्हें पढ़ने-लिखने का असली महत्व समझ में आया। चाहे घर वाले या पड़ोसी नौकरी मिलने न मिलने का ताना दें, उन्हें लगता है कि पढ़ना-लिखना हर किसी को आना चाहिए। इसे रोज़गार से नहीं जोड़ना चाहिए।

अपने घर-परिवेश की सफ़ाई के प्रति भी वह जागरूक हुई हैं। ज्यादा बच्चे हैं तो बताने में झिझकती हैं। उन्हीं के कारण अपने लिए कुछ भी समय नहीं निकाल पाती हैं, यह भी उन्हें साफ तौर से समझ में आ रहा है। क्लास में आती हैं तो हमजोलियों के साथ हंस बोलकर समय ज्यादा अच्छा गुज़रता है। दो साल से साक्षरता कार्यक्रम चलने से पढ़ाई-लिखाई का माहौल बना है। क्लासों में आने को एक सामाजिक मान्यता मिली है। घरवाले व पड़ोसी यह नहीं सोचते कि वे मटरगश्ती या किसी ग़लत सोहबत में पड़कर समय जाया कर रही हैं।

बुनियादी बदलाव

"बहुत सी बातें कोई पढ़कर सुनाता था तो सच नहीं लगती थीं। खुद पढ़कर लगता है कि वह सब सच है।"

"पहले बैंक जाने की सोच भी नहीं सकती थी, अब खाता खोलने की सोच रही हूं।"

"बहुत से काम जिसके लिए औरों की खुशामद करनी पड़ती थी अब खुद कर लेती हूं।"

"पढ़ने-लिखने का सबसे ज्यादा फायदा यह हुआ कि मेरे साथ के लोग, घरवाले और पड़ोसी अब मुझे कुछ समझने लगे हैं। लोग मेरी बात ध्यान से सुनते हैं। खुद मुझे लगता है कि मेरी समझदारी बढ़ गई है।"

"पढ़ना-लिखना सीख जाने से मेरा आदमी बहुत खुश है। वह पढ़ा-लिखा था। उसे मेरा अनपढ़ होना अच्छा नहीं लगता था।"

"अनपढ़ होने की वजह से पति की बीमारी में बहुत दुख झेलना पड़ा। आज बहुत सी मुश्किलें उतनी बड़ी नहीं लगतीं।"

"राशनवाला अब पूरे पैसे ठीक से वापस करता है। पहले खुदरा रख ही लेता था। अब मैं अंगूठे की जगह अपने साइन जो बनाती हूं।"

"पढ़ना-लिखना सीखने के बाद मुझे लगता है कि मुझे कोई आसानी से बेवकूफ़ नहीं बना सकता।"

□

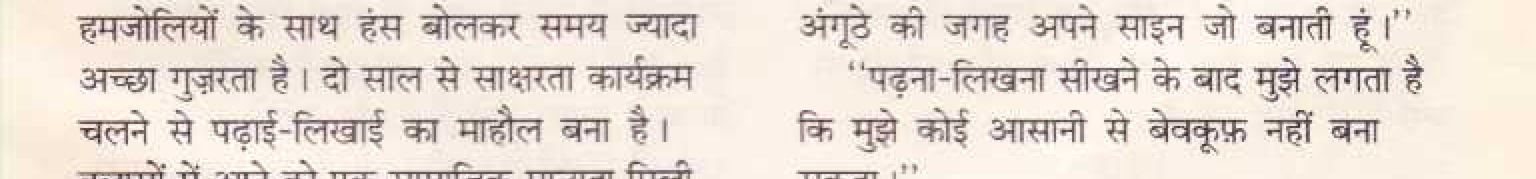

जनसंख्या, पर्यावरण व विकास पर एक नारीवादी नज़रिया

कमला भसीन

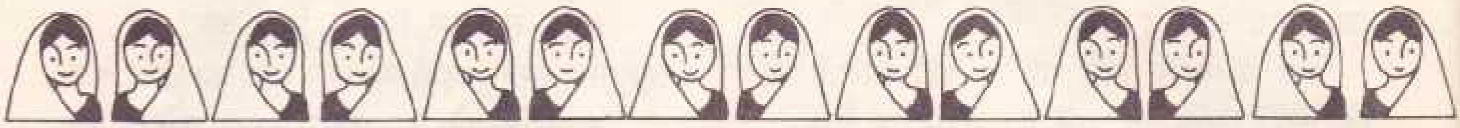

पिछले कई सालों से बढ़ती हुई आबादी की बहुत बात होती है। बार-बार यही कहा जाता है कि बढ़ती हुई आबादी के लिए जीने के साधन जुटा पाना, सबको दाना-पानी, सेहत, शिक्षा की सहूलियतें दे पाना असंभव होगा।

आजकल जनसंख्या की बात को विकास और खास तौर से पर्यावरण से जोड़ा जा रहा है। हर जगह, ज़ोर शोर से यह कहा जा रहा है कि जनसंख्या से पर्यावरण और विकास को हानि हो रही है। बढ़ती हुई आबादी की वजह से जंगल कट रहे हैं, धरती पर बोझ बढ़ रहा है।

विकास, पर्यावरण और जनसंख्या के संबंधों को समझना ज़रूरी है, और यह देखना भी ज़रूरी है कि इन सब बातों का ग़रीबों और औरतों पर क्या असर पड़ रहा है।

क्या वाकई गरीब दोषी हैं?

सब से पहले तो हम यह देखें और समझे कि बढ़ती हुई आबादी की ज़्यादा बात कौन करते हैं? जनसंख्या का डर अमीर देशों और ग़रीब देशों के अमीर और मध्यम परिवारों को ही ज़्यादा है। वही इसका हंगामा मचाए हुए हैं। वे ही अखबारों, फ़िल्मों, इश्तहारों, नारों के माध्यम से जनसंख्या से होने वाली हानियों की बात करते हैं। उन्हें अपने बच्चे तो बच्चे लगते हैं, ग़रीबों के बच्चे "बोझ", "मुसीबत", "जनसंख्या" और "आबादी" लगते हैं। ग़रीबों की बढ़ती तादाद उन्हें खतरनाक लगती है। पश्चिमी देशों को न जाने कब से चीन की आबादी का डर खाए जा रहा है।

आज अमीर देश और ग़रीब देशों के अमीर लोग यह झूठ दोहराने में लगे हैं कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने के ज़िम्मेदार ग़रीब हैं, विकास के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा भी ग़रीब हैं। ग़रीब देशों और ग़रीब लोगों को दोषी ठहराया जा रहा है। जो खुद शोषित हैं, जिन्हें आज की आर्थिक व्यवस्था ने ग़रीबी रेखा के कहीं नीचे जा पटका है—उन्हीं को दोषी कहा जा रहा है, क्योंकि उन्हीं के बच्चे ज्यादा होते हैं। और ग़रीबों से भी बड़ा दोषी कौन? औरतें। ग़रीब औरतों को सबसे ज्यादा हिकारत, घृणा की नजर से देखा जा रहा है। उन्हें ही देश की समस्याओं के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है। सारे परिवार नियोजन कार्यक्रम ग़रीब औरतों को शिकार बनाए हुए हैं, उन्हीं पर सब का वार है। ग़रीब औरत को देश, पर्यावरण और विकास का दुश्मन कहा जा रहा है। उस पर एक और लांछन, एक और बोझ।

अगर हम ग़रीबी और पर्यावरण की समस्या से निपटना चाहते हैं तो हमें इनके कारणों को ठीक से समझना होगा। आज तो साज़िश है असल कारणों को दबाने और भुलाने की। अमीर देश और अमीर लोग ग़रीबों को इसलिए दोषी ठहरा रहे हैं क्योंकि वे अपने गिरेबान में नहीं झांकना चाहते। वे अपने उपभोग को कम नहीं करना चाहते और न ही वे पर्यावरण प्रदूषण और बढ़ती हुई ग़रीबी के लिए अपने आपको ज़िम्मेदार मानना चाहते हैं। चूंकि सारे प्रचार माध्यम अमीरों के हाथ में हैं, नीतियां और योजनाएं बनाने वाले उनके अपने हैं, वे ग़रीबों के खिलाफ़ अफ़वाहें फैलाते रहते हैं, झूठ का सच, सच का झूठ करते रहते हैं। इस साज़िश का पर्दाफ़ाश करना ज़रूरी है और पर्यावरण और ग़रीबी पर गहराई, ठंडे दिमाग़ और ईमानदारी से सोचना ज़रूरी है।

धरती पर ज्यादा बोझ किस का है? अमीरों का या ग़रीबों का

यह बात सरासर ग़लत है कि पर्यावरण प्रदूषण के ज़िम्मेदार ग़रीब लोग हैं, क्योंकि—

1. जिन रसायनों, गैसों आदि से पर्यावरण अधिक प्रदूषित हो रहा है उनका प्रयोग ग़रीब बहुत कम करते हैं। कारों की संख्या जिस तेज़ी से बढ़ रही है उसकी कोई बात नहीं करता। एक कार, कई ग़रीबों से ज्यादा पर्यावरण प्रदूषित करती है। रेफ्रीजरेटरों, एअर कंडीशनरों से निकलने वाली गैसें सिर्फ़ अमीरों के कारण निकल रही हैं। नदियों, समुद्रों, तालाबों का पानी जो फ़ैक्टरियां गंदा कर रही हैं वो फ़ैक्टरियां ग़रीबों की नहीं है।
2. ग़रीब अपने जीने के लिए बहुत कम साधनों का उपयोग करते हैं। स्टील, सीमेंट, पैट्रोल, प्लास्टिक, बड़े बंगले, सैकड़ों कपड़े कुछ भी वो काम में नहीं लेते। दुनिया के अमीर देशों में रहने वाले 20 प्रतिशत लोग दुनिया के 80 प्रतिशत संसाधन हड़प रहे हैं। उनका अधिक भार है पृथ्वी पर या ग़रीबों का?
3. अमीर देशों में शुरू किए गए उत्पादन के तरीके, उनकी लगाई फैक्टरियां, उनके खाने, पहनने के तरीके, उनका उपभोक्तावाद पर्यावरण प्रदूषण का सबसे बड़ा ज़िम्मेदार है।

हमें यह समझना होगा कि जनसंख्या पर्यावरण समस्या का कारण नहीं है। ये दोनों ही समस्याएं उस आर्थिक और राजनैतिक ढांचे की उपज हैं जिसने प्राकृतिक संसाधनों का पूरी तरह से दुरुपयोग किया है और हर जगह आर्थिक विषमताएं बढ़ाई हैं।

टिकाऊ विकास ज़रूरी

अगर बीमारी का ठीक विश्लेषण नहीं होगा तो इलाज कभी ठीक नही हो सकता। यही वजह है कि बीस-तीस साल से जनसंख्या रोकने के लिए अरबों रुपये खर्च करने के बाद भी समस्या हल नहीं हो रही। और न ही इस तरह यह समस्या हल हो सकती है।

1974 में बुकारेस्ट में हुए विश्व जनसंख्या सम्मेलन में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कहा था कि **विकास सबसे अच्छा गर्भ निरोधक है।** बहुत सच्चा और सही नारा था यह, पर आज विकास की बात न करके गर्भ निरोधकों को ही विकास माना जा रहा है। परिणाम यह है कि न विकास हो रहा है और न जनसंख्या कम हो रही है।

हम अगर अमीर देशों के इतिहास में जाएं या मैं एक मध्यम वर्ग की औरत अपने ही परिवार के इतिहास को देखूं तो पाऊंगी कि परिवार की संख्या हमारे जीवन स्तर और उत्पादन के तरीके के साथ जुड़ी है। खेतीहर घरों में बच्चे ज्यादा होते रहे हैं

यूरोपवासियों ने पांच सौ साल पहले अमरीका पर कब्ज़ा किया और वहां के मूल निवासियों को लगभग खत्म कर दिया। उन का सब कुछ हथिया लिया, बिना कोई मुआवज़ा दिए। अफ्रीका, एशिया, दक्षिण अमरीका में उपनिवेश बनाए गए। वहां की ज़मीन, खनिजों, तेल को कब्ज़े में किया और धरती की कमर तोड़ दी। उपभोग के लिए, मुनाफे के लिए धरती को काटा, पीटा, लूटा। जंगल खत्म कर दिए। पर्यावरण की कोई परवाह नहीं की, संसाधनों के मूल मालिकों की अवहेलना की।

पिछले बीस सालों में भारत में अमीरों और ग़रीबों में फ़र्क बढ़ा है, कम नहीं हुआ। अमीर और ग़रीब देशों के बीच भी विषमतायें बढ़ी हैं। यह जनसंख्या बढ़ने की वजह से नहीं है बल्कि शोषण की वजह से है, विकास की ग़लत धारणाओं और योजनाओं की वजह से है।

और होते हैं। मज़दूरों के बच्चे ज्यादा होते हैं—एक तो इसलिए क्योंकि वहां हर व्यक्ति की कीमत है, हरेक मेहनत करके खाता है। वह बोझ नहीं है। **ग़रीब का बच्चा 25 साल तक बैठ कर उपभोग नहीं करता।** वह तो चार पांच साल की उम्र से ही कमाता है। दूसरा कारण है किसानों और मज़दूरों को स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त नहीं होतीं। उनके बच्चे बहुत मरते हैं। परिवार के सदस्य ही उनकी सुरक्षा और पूंजी हैं।

इन हालातों को बदले बिना ग़रीबों पर परिवार नियोजन लादना न उचित है, न संभव। जबर्दस्ती परिवार नियोजन लादने से सरकार और ग़रीबों के बीच की दूरी बढ़ेगी। जनता को साथी, सहयोगी मान कर चलना ही ठीक है। उन्हें दुश्मन, दोषी, बेवकूफ़ कहना और समझना न अमीरों के हित में है, न देश के और न ही प्रजातंत्र में यह उचित है।

यही कहानी हर अमीर देश की है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा, स्वास्थ सेवाएं आने के साथ छोटे परिवार आए। परिवार नियोजन अपने आप अपनाया गया। उसे थोपने की ज़रूरत नहीं पड़ी। यही सब जब ग़रीबों के साथ होगा तो उनके परिवार भी नियोजित होने लग जाएंगे।

इस सब के साथ-साथ और भी कदम उठाए जाएं जिनसे लोगों की शिक्षा व स्वास्थ्य का स्तर बेहतर हो। औरतों और मर्दों को अच्छे, सुरक्षित गर्भ निरोधक प्राप्त हों ताकि वे अपनी मर्जी से अपने परिवार को सुनियोजित कर सकें। परिवार नियोजन की ज़िम्मेदारी स्त्री और पुरुष दोनों को उठानी होगी। इसके लिए ज़रूरी है महिलाओं की स्थिति सुधारना, उन्हें सशक्त बनाना। एक समग्र सोच और समग्र विकास के बिना परिवार नियोजन की बात करना ग़रीब और स्त्री-द्रोही है और इसीलिए ग़लत है। □

पर्यावरण और महिला आंदोलनों से जुड़े अधिकतर लोगों का मानना है कि पर्यावरण और जनसंख्या के सवालों से निपटने के लिए:—

— आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को कम करना होगा।
— मुनाफ़े के लिए प्रकृति का जो विनाश किया जा रहा है उसे रोकना होगा।
— प्राकृतिक संसाधनों के लिए आदिवासियों और ग्रामवासियों को ज़िम्मेदारी सौंपनी होगी। देशी और विदेशी मुनाफ़ाखोर संसाधनों को नष्ट ही कर सकते हैं।
— संसाधनों पर मुट्ठी भर लोगों और देशों के आधिपत्य को खत्म करना होगा और उपभोग को कम करना होगा।
— टिकाऊ विकास की बात करनी होगी जिसमें प्रकृति और मानव मिल कर रहें। हरेक की भागीदारी हो और स्त्री-पुरुष में भी विषमताएं न हों। ऐसा विकास हो जिसमें जनसाधारण की ज़रूरतें पूरी हों, साधनों व सत्ता का विकेंद्रीकरण हो।

मुझे मत मारो! मैं डायन नहीं हूं

विशेष संवाददाता

अठारहवीं शताब्दी के भारत में अनेक कुप्रथाओं के ज़रिए औरतों की खुले आम हत्या की जाती थी। उनमें सती के नाम पर औरत को जला देना और डायन कह कर पीट-पीट कर मार देना खास थीं। आज जब देश के किसी कोने में इक्का-दुक्का सती की घटना घटती है तो सारे देश में हलचल मच जाती है। रूप कुंअर हत्याकांड इसी तरह की घटना थी। लेकिन यदि यह कहा जाए कि देश के एक बहुत बड़े राज्य में आज भी डायन के नाम पर सैंकड़ों-हज़ारों औरतों को खुले आम मारा जा रहा है, तो क्या यकीन होगा?

बिहार के पुरुषो, शर्म करो

बिहार के आदिवासी क्षेत्रों सिंहभूम, जमशेदपुर, धनबाद, हज़ारीबाग व झारखंड क्षेत्र में हर वर्ष लगभग सौ औरतें डायन करार दे कर मार दी जाती हैं। अनेक को मारपीट कर बेइज्जत कर के गांव से निकाल दिया जाता है। उनकी जमीन, जायदाद, झोंपड़ी, घर हड़प लिए जाते हैं। यह सब हो रहा है संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र में। जहां जनता की चुनी हुई सरकार है। पुलिस और कानून व्यवस्था है। जिस देश का संविधान कहता है कि लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। सिर्फ़ बिहार ही नहीं, बल्कि पूरे देश के शासनतंत्र के मुंह पर यह करारा तमाचा है।

क्या कसूर था इनका?

यहां आमतौर पर जिस औरत से कोई दुश्मनी हो या उसकी ज़मीन हड़पनी हो या फिर वह विधवा हो तो आस-पास होने वाली किसी भी मौत के लिए उसे जिम्मेदार ठहरा दिया जाता है। पंचायत बैठ कर उसे डायन करार देती है। गांववाले उसे पीट-पीट कर मार देते हैं, जला देते हैं या पत्थर मार-मार कर गांव से बाहर भगा देते हैं।

— हजारीबाग के बरही गांव में नान्हू यादव रहता था। उसकी पड़ौसन थी सोहबा। नान्हू का चौदह साल का लड़का मिर्गी का मरीज़ था। एक दिन वह मर गया। नान्हू ने सोहबा पर जादू-टोना करने का आरोप लगाया। आज सोहबा को उसके घर व गांव से निकाल दिया है। उसके पति और दो बच्चों की आंखों में तेजाब डाल दिया। वह बेचारी न्याय पाने के लिए मुख्यमंत्री तक के पास गई लेकिन ऊंची कुर्सियों पर बैठने वाले स्वार्थी नेताओं के कान में एक गरीब औरत की पुकार कहां पहुंचती है।

— कजरी का पति बीमार था। वह मर गया। कुछ समय बाद उसका एक देवर भी मर गया। ससुराल वालों ने कहा ''कजरी डायन है, उसने दोनों को खा लिया।'' जानकारों का कहना है कि यह सब कजरी के हिस्से की ज़मीन हड़पने की साजिश थी। आदिवासियों में अविवाहित, विवाहित या विधवा औरत का भी जायदाद में बराबर का हिस्सा होता है।

— बदकी का पति शहर में नौकरी करता था। बदकी गांव में ससुराल वालों के साथ रहती थी। उसका देवर बीमार पड़ा। ओझा ने आकर झाड़-फूंक की। कुछ समय बाद देवर मर गया। ओझा ने अपनी जान बचाने के लिए बदकी को उसकी मौत का जिम्मेदार ठहरा दिया। बदकी के पढ़े-लिखे पति को ओझा की बात का विश्वास नहीं था। लेकिन वह भी गांववालों का विरोध नहीं कर सका। आखिर उन सबको जमीन व गांव छोड़ देना पड़ा।

अब तो जागो

यह पूरे समाज पर एक कलंक है कि खुलेआम लोग औरतों पर जघन्य अत्याचार कर रहे हैं और प्रदेश की सरकार, पुलिस, सामाजिक संस्थाएं, पढ़े-लिखे लोग कुछ भी नहीं कर पा रहे।

बिहार की सामंती परंपरा के तहत औरत का दर्जा वैसे भी जूती के बराबर ही रहा है। आज सामंतवाद खत्म हो जाने पर भी लोगों के दिमाग नहीं बदल पाए हैं। कुछ महिला संस्थाएं इस समस्या के प्रति जागरूक हैं। अपने स्थानीय स्तर पर वे ऐसी औरतों को बचाने की कोशिश भी करती हैं। कई बार इस तरह की घटनाओं के पीछे औरतों का यौन शोषण भी मुख्य कारण होता है।

अंधविश्वास का बहाना बना कर गांव के मर्द और पंचायत की मिलीभगत से औरतों को नारकीय यातना दी जाती है। आमतौर पर ये मर्द वे लोग होते हैं जिनका गांव में दबदबा होता है। ये लोग या तो औरत का शारीरिक इस्तेमाल नहीं कर पाए या उसकी ज़मीन पर इनकी नज़र होती है।

सिर्फ़ शर्म से सिर झुकाने से काम नहीं चलेगा। हर जागरूक स्त्री और पुरुष को राष्ट्रीय स्तर पर इसके खिलाफ़ आवाज़ उठानी चाहिए। □

कल

कल
अचानक
जब मैं सीधी खड़ी हुई
तो मेरा सिर
तुम्हारी ठोड़ी से जा टकराया
तुम्हारी जुबान दांतों के बीच दब गई
मुंह खून से भर गया
और तुम चाहते हुए भी बोल न सके
पर मैं
शर्मिन्दा नहीं हूं
इस टक्कर के लिए
जो कभी तो होनी ही थी
टक्कर
मेरी कमर सीधी करने से नहीं हुई
बल्कि इसलिए हुई
कि तुम मेरे रास्ते में थे

मूल कविता : **बिरगिता बुश्ट**
अनुवाद : **कमला भसीन**

आओ बहनों मिलजुल कर
हम सब अपनी शक्ति बढ़ाएं
पुरुष प्रधान समाज में अपना
हम सब भी अधिकार जताएं
दहेज-प्रथा बाल-विवाह बलात्कार को
इस देश से मार भगाएं
हर नारी के मानस में
आत्म सम्मान का दीप जलाएं

सोना देवी दुबे
मांडुप, बंबई

एड्स

मुझसे बचना ही मेरा इलाज है

घटना एक

किशन छपरा गांव का रहने वाला है। वह ज़मींदार के खेत पर मजदूरी करके पेट पालता है। अपनी बहन की शादी पर किशन ने महाजन से चार हजार रुपए उधार लिए थे। मजदूरी से मिले पैसों में यह कर्ज़ चुकाना नामुमकिन था। इसलिए जब उसे शहर की एक मिल में नौकरी मिल गई तो उसने इंकार नहीं किया। शहर में आए हुए उसे कुछ दिन ही हुए थे कि उसका दोस्त रमेश उसे कोठे पर ले गया। एक दिन की यह भूल, रोज की आदत बन गई।

छुट्टियों में किशन गांव आया। एक दिन उस की तबीयत बहुत ज्यादा खराब हो गई। उसे अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल में जांच से पता चला कि किशन को कोई जानलेवा बीमारी है—'एड्स'। डॉक्टरों के पास इसका कोई इलाज नहीं है। यह बीमारी उसे पराई स्त्री से यौन-संबंध रखने के कारण हुई है। दो साल के अंदर किशन की मृत्यु हो गई। पर गांव में लोगों को समझ नहीं आया कि किशन को यह बीमारी लगी कैसे। चाची ने तो इसे भूत-प्रेत का चक्कर बताया।

घटना दो

नदीम बेलदारी पर काम करता था। एक दिन वह झूले पर लटक कर चिनाई कर रहा था। अचानक संतुलन बिगड़ा और वह पांचवे तले से नीचे गिर पड़ा। उसका सिर फट गया। बेहोशी की हालत में उसे अस्पताल लाया गया। डॉक्टर ने कहा, फौरन आपरेशन करना पड़ेगा। पर खून काफी बह गया है। खून चढ़ाना पड़ेगा। नदीम का भाई ब्लड-बैंक से खून लाया। नदीम की नसों में ज़िंदगी दौड़ गई। अस्पताल से घर आने के कुछ दिन बाद ही नदीम को दस्त लग गए। हालत बिगड़ती गई। अस्पताल में जांच हुई। पता लगा नदीम को 'एड्स' है। उसका इलाज नहीं हो सकता। उसका भाई ओझा को लाया। जड़ी-बूटी, जंतर-मंतर सब बेकार। कुछ ही दिन में नदीम चल बसा। गांव वाले बोले 'नदीम को छूत की बीमारी थी।' पर एक बात साफ नहीं थी, यह छूत की बीमारी नदीम को लगी कैसे?

घटना तीन

शशि मां बनने वाली थी। रामदयाल बहुत खुश था। आखिर बच्चा हुआ। बेटा। सबकी खुशी का ठिकाना न रहा। डेढ़ साल बीत गए। गुड्डू अब चलने लगा था। पर वह न जाने क्यों दिन-ब-दिन कमज़ोर होता जा रहा था। उसे तेज़ बुखार भी रहता था। चेहरा पीला पड़ता जा रहा

था। सरकारी दवाखाने में उसके खून की जांच की गई। मालूम चला उसे 'एड्स' नाम की बीमारी है। डाक्टर ने बहुत कोशिश की। पर बच्चा मर गया।

बच्चे को 'एड्स' हुआ कैसे? डाक्टर ने बताया, गुड्डू को 'एड्स' मां के पेट में ही हो गया था। शशि को यह बीमारी रामदयाल से लगी थी। और रामदयाल इसे शहर से लाया था। शहर में उसके एक वेश्या से संबंध थे। गांव में उसने शशि के साथ बिना निरोध के सहवास किया। नतीजा, यह बीमारी शशि और गुड्डू को भी लग गई। अगर रामदयाल ने शहर में निरोध का इस्तेमाल किया होता तो ऐसा हरगिज़ न होता।

गांव में यह तीसरी मौत थी जिसका कारण 'एड्स' था। लोग तरह-तरह की अटकलें लगाते थे। कोई कह रहा था भूत फैला रहे हैं यह बीमारी। कोई कहता था माहवारी के समय सहवास से यह बीमारी फैलती है। डाक्टरनी सुशीला परेशान थी। वह जानती थी गांव के गरीब लोग शहर मजदूरी करने जाते हैं। वहां जाकर उन्हें बुरी आदतें लग जाती हैं। या फिर वे चोट लगने पर जख्मों की देखभाल ठीक तरह नहीं करते। उन्हें खुला छोड़ देते हैं। ऐसे में वह 'एड्स' जैसी बीमारियों का शिकार जल्दी होते हैं। गांव में आकर अपनी पत्नी-बच्चों में बीमारी फैलाते हैं। इस तरह से तो यह बीमारी बढ़ती ही जाएगी। सुशीला ने इसलिए गांव की चौपाल पर एक मीटिंग बुलाई है।

'एड्स' : क्या और क्यों?

रमिया चाची ने सवाल किया, बहनजी यह 'एड्स' क्या है? कैसे फैलता है?

शंकर बोला—दीदी, हमें कैसे पता चलेगा कि हमें 'एड्स' है?

धनिया ने पूछा—दीदी, हम इससे बचें कैसे?

सुशीला ने बताया—'एड्स' नाम की यह जानलेवा बीमारी एच. आई. वी. नाम के कीटाणु से फैलती है। इस बीमारी से शरीर की बीमारियों से लड़ने की ताकत धीरे-धीरे कम होती जाती है। इससे अन्य बीमारियों के कीटाणु शरीर को कमजोर बना देते हैं। और मरीज की मौत हो जाती है।

'एड्स' मुख्य रूप से यौन संबंधों से फैलता है। पर इसका मतलब यह नहीं कि वेश्याएं और ग्राहकों से ही यह फैलता है। एक से अधिक साथी से यौन संबंध रखने पर इसके फैलने की संभावनाएं ज्यादा होती हैं। 'एड्स' खून से भी फैलता है। अगर अस्पताल में बिना उबाली सुइयों का इस्तेमाल किया गया हो, या फिर मरीज़ को ऐसा खून चढ़ाया गया हो जिसमें एच. आई. वी. कीटाणु हो। *'एड्स' मां से गर्भ में बच्चे को भी* फैल सकता है।

'एड्स' साथ काम करने, हाथ पकड़ने, चूमने, साथ खाना खाने, एक ही गुसलखाना इस्तेमाल करने, मच्छर काटने, खांसने और छींकने से नहीं फैलता।

'एड्स' के लक्षण

अगर आपकी :

— ग्रंथियां सूज जाएं
— दस्त, खांसी या तेज़ बुखार हो जाए
— खाल में जलन, खुजली या चकत्ते पड़ जाएं
— लगातार वजन घटने लगे तो आप डाक्टर से मिले और जांच करवाएं

अंत में सुशीला दीदी ने बताया—'एड्स' का अभी तक कोई इलाज नहीं मिला है। इसे जड़ी-बूटियों, जादू-टोने से भी दूर नहीं किया जा सकता। इससे बचने के लिए सहवास के समय हमेशा निरोध का इस्तेमाल करें। जहां तक हो एक साथी से ही यौन संबंध रखें। खून लेते या देते वक्त ध्यान रखें कि सुइयां उबाली गई हों। घावों को खुला न छोड़ें। इन सभी सावधानियों को बरतने से आप इस बीमारी से बच सकते हैं। □

शरीर और स्वास्थ्य से मेरा संबंध

वीणा शिवपुरी

नहीं मालूम कब मेरा अपना शरीर मेरे लिए अजनबी बन गया। मुझे अपनी शरीर रचना का भी पूरा ज्ञान नहीं रहा। शरीर के भीतर क्या प्रक्रियाएं होती हैं यह भी किसी ने नहीं बताया। सामाजिक रीतिरिवाजों और रूढ़ियों ने अपने शरीर के बारे में जानने को ही बुरा माना। बचपन से लड़की को शरीर को देखने, छूने, पहचानने पर टोका। केवल माहवारी होने पर बढ़ी-बूढ़ियों ने थोड़ी सी जानकारी दी। लेकिन उससे आगे मेरे सवालों के जवाब नहीं मिले।

मेरे शरीर को कभी गंदा, तो कभी नर्क का द्वार बताया। उसके बारे में मेरी उत्सुकता को दबाया। बस, यूं ही धीरे-धीरे मेरे शरीर से मेरा रिश्ता टूट गया। शहरीकरण हुआ, आधुनिक शिक्षा आई। गांवों का घरेलू अपनापन चला गया। पहले तो जंगल, खेत, खलिहान में सहेलियों के साथ खेलते-बतियाते बहुत कुछ जान लेती थी। नई सभ्यता में वह सब खत्म हो गया। न गांव की नाईन रही, न दाई। अब मेरा शरीर ढकने, छिपाने और चुप रहने की चीज बन गया।

मेरा स्वास्थ्य

पहले पेट में दर्द होने पर घर की कोई भी औरत गर्म तेल से पेट मल देती थी। खांसी-जुकाम, बुखार में मैं खुद काढ़ा बना कर पी लेती थी। जचगी के दर्द उठते तो सास व देवरानी संभाल

लेती थीं। कोई माथे पर हाथ फिराती, तो कोई सहारा देकर उकडूं बैठने में मदद करती। बीच-बीच में ठिठोली भी करती जाती—"अरी बहना तब तो हंसी, अब क्यों रोती है?" मुझे मालूम होता था कि क्या खाने से पेट में अफारा होता है। कौन से मौसम में तबीयत ढीली रहती है।

अब जब बीमार पड़ती हूं या जचगी होती है तो डाक्टर-नर्स न मुझसे कुछ पूछते हैं, न कुछ बताते हैं। बस आंख देखी, छाती देखी, गला देखा और पर्चा लिख दिया। जचगी के दर्दों में घंटों अकेली पड़ी कराहती हूं। उस कमरे की मेज पर, बड़ी-बड़ी लाइटों के नीचे पड़ी डर से कांपती रहती हूं। सारा शरीर अकड़ जाता है। बीच-बीच में डाक्टर-नर्स आती भी हैं तो डांट डपट कर चली जाती हैं। मैं पुकारती रहती हूं "हाय मेरी मां।"

मेज पर पीठ के बल लेट कर न तो बच्चा नीचे खिसकता है, न मैं ज़ोर लगा पाती हूं। फिर सुइयां लगती हैं, शरीर काटा जाता है। खींचखांच कर, मशीनों-औजारों से बच्चे को बाहर निकालते हैं। वहां पड़े-पड़े मुझे लगता है कि मैं कितनी बेबस और लाचार हूं। कसाई की छुरी तले की बकरी।

यह सब बदलना होगा

मेरा शरीर मेरा अपना है। उसके उतार चढ़ाव, सुख दुख को मैं सबसे अच्छी तरह जानती हूं। आखिर मैं उसे बीस, तीस, पचास साल से जानती हूं। जिस डाक्टर ने आज पहली बार मुझे देखा वह भला मुझे मुझसे बेहतर कैसे जान सकता है। हां, वह बीमारी और दवाइयों के बारे में जानता है तो मैं भी तो अपने बारे में जानती हूं। हम दोनों को मिल कर, आपस में सलाह कर के बीमारी का मुकाबला करना चाहिए। तभी मैं सेहतमंद हो सकती हूं।

अगर वह समझे कि मैं मूर्ख हूं, मेरी राय का कोई महत्व नहीं, सिर्फ वही सारी समझ रखता है तो बात नहीं बनेगी। पिछली बार मैंने डाक्टर से कहा था कि मेरी दूध भरी छातियों में जलन हो रही है। मुझे मालूम है कि अंदर फोड़ा पक रहा है। पहले भी ऐसी जलन हुई थी तो फोड़ा निकला था। डाक्टर ने एक न सुनी। तीन दिन बाद गई, तब तक सूजन और लाली बाहर तक फैल गई थी। 103 डिग्री बुखार चढ़ आया था। कहने लगा फोड़ा है, ऑपरेशन करना पड़ेगा। "अरे माटी मिले, तूने मेरी पहले क्यों न सुनी।"

शरीर और सेहत से दोस्ती

हमारे शरीर से हमें प्यार होना चाहिए। उसकी समझ होनी चाहिए। छोटी मोटी जांच परख तो खुद हमें आनी चाहिए। ताकि बात-बात में डॉक्टर के यहां अस्पताल न भागना पड़े। हमारी दादी नानी के नुस्खे कितने काम के थे। खांसी हुई तो हल्दी शहद चाट ली, नहीं तो रात को दूध हल्दी, देसी घी के साथ पी ली,। अब खांसी का बाजारी मिक्सचर पीने से दिन भर नींद आती है। भला काम कौन करेगा। बात-बात में सुई, गोली, कैप्स्यूल का ढेर। हमारा पेट तो दवा की दुकान बन जाता है। फिर किसी दवा से जी मिचलाता है तो किसी से पेट खराब हो जाता है। एक बीमारी का इलाज कराओ और दो साथ में ले आओ।

आखिर क्या करें?

अंग्रेज़ी इलाज के भी कई फायदे हैं। उसमें ऐसी जांचों की सुविधा है जिनसे शरीर के भीतर का हाल मालूम हो जाता है। जहां चीर फाड़ के

बिना इलाज नहीं हो सकता वहां भी यह मदद करता है।

हमारा कहना तो बस यह है कि डॉक्टर सर्वेसर्वा न बन कर हमारा दोस्त बने। छोटी-मोटी बीमारियों में कड़ी-सख्त दवाइयां न दे वरना बड़ी बीमारी होने पर उन दवाइयों का फायदा ही नहीं होगा। सबसे बड़ी बात यह कि हम अपने घरेलू इलाज, आयुर्वेदिक, यूनानी दवाइयों को दोबारा जिंदा करें। छोटी-मोटी चीजों से खुद निपटें। हमारे शरीर में प्रकृति ने रोगों से लड़ने की ताकत दी है। उसे पनपाएं। अपने शरीर को पहचानें।

एंटीबायोटिक दवाइयों की खोज इलाज की दुनिया में एक बड़ी क्रांति थी। शरीर के भीतरी अंगों की बीमारियों और गंभीर रोगों का इलाज इनसे संभव हो सका। लेकिन पिछले कुछ दशकों से दुनिया भर के डाक्टर यह जान कर बड़े चिंतित हैं कि अब ये दवाइयां फायदा नहीं कर रही हैं। या यूं कहें कि इन दवाइयों के अंधाधुंध इस्तेमाल से अब हमारा शरीर इनका आदी होता जा रहा है। अब गंभीर रोग होने पर इलाज कैसे किया जा सकेगा? हम सबको भी इसके बारे में सोचना है।

ज़यादातर आम बीमारियों में इतनी ज्यादा और सख्त दवाइयों की ज़रूरत ही नहीं होती जितनी दी जाती हैं। इसके पीछे डॉक्टरों, वैज्ञानिकों और दवा बनाने वाली कंपनियों की मिली भगत है। हमें इस बारे में चौकन्ना रहने की जरूरत है। □

बेटियां मांगेंगी हिसाब

अधिकार उसको भी है जीने का
मर्दों की इस दुनिया में
जिसने मर्दों को जन्म दिया है
उंगलियां अब उधर भी उठेंगी
जिधर से कभी
तलवारें उठा करती थीं
कोई अत्याचार करके
अब चुपचाप निकल नहीं सकता
समानता के इस दौर में
हर अत्याचारी को
खड़ा होना पड़ेगा
न्याय के कठघरे में
बेटियां मांगेंगी हिसाब
एक-एक जुल्म का
जो होता आ रहा है
उनपर सदियों से
जिन्हें झेलते हुए
उनकी छाती
चट्टान बन चुकी है
पर मन में भी अब
एक संकल्प है
चट्टान की तरह
लक्ष्य प्राप्ति का।

—सोहराब खान ''सबेरा''

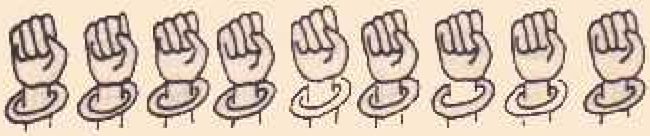

नॉर-प्लांट यह आखिर है क्या?

जुही जैन

औरत चाहे शहर में रहने वाली हो, चाहे गांव की। पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़। अपने शरीर पर उसका अपना हक है। उसे अधिकार है कि वह फैसला कर सके कि वह कब बच्चा चाहती है, कब नहीं। औरत के इसी नजरिए को लेकर सरकार नित-नए गर्भ निरोधक बनाए जा रही है। इनमें से ज्यादातर निरोधक औरतों के लिए हैं।

आजकल सरकार एक नए गर्भ-निरोधक नॉर-प्लांट का ज़ोर-शोर से प्रचार कर रही है। यह पूरी जांच किए बिना बड़े पैमाने पर औरतों को लगाया जा रहा है। काफी महिला संगठनों ने इस निरोधक के खिलाफ आवाज उठाई है। सरकार को ज्ञापन भी दिए हैं। साथ ही औरतों को इस बारे में जानकारी भी दी जा रही है। आइए देखें, यह नॉरप्लांट आखिर है क्या? इसका उपयोग किस हद तक सुरक्षित है? क्या इसका इस्तेमाल करने के बाद दोबारा औरतें स्वस्थ बच्चे पैदा कर पाएंगी?

नॉरप्लांट क्या है?

नॉरप्लांट रबर की छः नलियों से बना है। इन नलियों में 'लेवनोजेस्ट्रोल' नाम का रसायन भरा होता है। ये नलियां औरत की बाजू की चमड़ी के नीचे लगाई जाती हैं। ये रसायन रिसकर खून में मिलता रहता है। इससे पांच साल तक बच्चा नहीं ठहरता। पांच साल खत्म होने पर इसे निकलवा देना ज़रूरी है क्योंकि अब इससे गर्भ धारण होने की संभावना होती है। साथ ही बचे हुए रसायन की वजह से बच्चा बच्चेदानी की जगह अंडा प्रवाहित करने वाली नली में बड़ा होने लगेगा। ऐसा होने पर अगर ठीक समय पर आपरेशन नहीं किया गया तो औरत की जान भी जा सकती है।

लगाने और हटाने का तरीका

नॉरप्लांट लगाने के लिए एक छोटा ऑपरेशन किया जाता है। इसे निकालने के लिए भी ऑपरेशन किया जाता है। निकालने वाला ऑपरेशन ज्यादा कठिन होता है क्योंकि इन नलियों के आस-पास गांठें बन जाती हैं। कभी-कभी ये नलियां खिसक कर दूसरी जगह पहुंच जाती हैं। इसलिए सावधानी और सफाई से न किए जाने से घाव बिगड़ जाता है।

नॉरप्लांट लगाने से जुड़े खतरे

नॉरप्लांट के इस्तेमाल करने से कई परेशानियां सामने आती हैं।

1. नॉरप्लांट का असर दिमाग के कई हिस्सों में होता है जिससे मानसिक रोग भी हो सकता है।
2. दिल की और रक्त चाप की बीमारी हो सकती है।
3. माहवारी बंद होने, ज्यादा खून गिरने, बार-बार माहवारी आने जैसी शिकायतें हो सकती हैं।
4. अंडेदानी में फोड़े भी हो सकते हैं।
5. बाल झड़ना, सरदर्द, वजन घटना-बढ़ना, खुजली व पित्त भी हो सकती है।

6. टांगों व शरीर की नसों में गांठे हो सकती हैं। लंबे समय तक इस्तेमाल के बारे में अभी पूरी जानकारी नहीं है। पर अब तक हुए परीक्षणों में कुछ औरतों को कैंसर होने लगा है।

ज़रूरी सावधानियां

क्या सब औरतें नॉरप्लांट इस्तेमाल कर सकती हैं? नहीं। अगर आपको रक्तचाप, दिल की बीमारी, पीलिया, कैंसर, तपेदिक, मिर्गी आदि जैसी तकलीफें हैं तो आपको नॉरप्लांट नहीं लगाना चाहिए। माहवारी नियमित और स्वस्थ न हो, या फिर आप गर्भवती हों या बच्चे को दूध पिलाती हों तो भी यह निरोधक आपके लिए ठीक नहीं है।

अगर आप नॉरप्लांट लगवा चुकी हैं और लगवाने के बाद आपको माहवारी न आए या पेट के निचले हिस्से में दर्द हो तो आपको यह निकलवा देना चाहिए। सरदर्द रहना, छाती या बाजू में दर्द, सांस लेने में तकलीफ, मितली आना, उल्टी में खून, चक्कर आना, ऐसी शिकायतें होने पर भी नॉरप्लांट तुरंत निकलवा देना चाहिए।

अगर नॉरप्लांट लगाने पर भी आपको बच्चा ठहर जाए तो? ऐसी स्थिति में तुरंत गर्भपात करा लेना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया तो बच्चे को कैंसर भी हो सकता है। खासकर, गर्भ में लड़की होने पर उसके अंग लड़कों जैसे बन सकते हैं।

नॉरप्लांट का इस्तेमाल बंद करने पर क्या बच्चा ठहर सकता है? यह तो दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि नॉरप्लांट निकालने पर बच्चा स्वस्थ होगा। पर फिर भी अनुमान यह है कि नॉरप्लांट के रसायन से मिलते-जुलते रसायनों के इस्तेमाल के बाद औरतें दोबारा बच्चे पैदा नहीं कर सकी हैं।

इन सब बातों को जानने के बाद मुख्य रूप से यह तय हो चुका है कि वास्तव में नॉरप्लांट का इस्तेमाल औरतों के लिए नुक्सानदायक है। मूल बात यह है कि यह निरोधक ऐसा नहीं है जिसको हम अपनी मर्ज़ी से लगा सकें या निकाल पाएं। मतलब, हर बार हमें डाक्टर के पास जाना होगा। यानि हमारे बुनियादी हक हमारे न होकर किसी और के होंगे। कुछ लोग कहते हैं कि अमरीका में भी औरतें इसका इस्तेमाल करती हैं। पर हम यह न भूलें कि अमरीका और भारत के हालात में फर्क है। वहां बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं हैं। नुक्सान की भरपाई के कानून हैं। जानकारी का स्तर ऊंचा है। भारत में ऐसा कुछ नहीं है। यहां लोगों को इलाज तक तो ठीक से मिलता नहीं। फिर ये दूसरी सुविधाएं कहां।

नॉरप्लांट हम सबके लिए खतरनाक है। इसका विरोध करना हमारा फ़र्ज है। बगैर परीक्षण इसका प्रयोग ग़ैर-कानूनी है। इसलिए 'सबला' की ओर से हम आपको अपने स्तर पर इस अभियान में शामिल होने के लिए आमंत्रित करते हैं।

(नॉरप्लांट पर अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :—
जागोरी-सी-54 साउथ एक्सटेंशन-II
नई दिल्ली-110049)

□

एक नया सवेरा

विशेष संवाददाता

एक बार एक विदेशी भारत घूमने आया। राजस्थान में घूमते हुए उसने चारों तरफ देखा, रंग-बिरंगे घाघरे, रेशमी गलीचे, रैगरी जूतियां, बावड़ी, नाले। इन्हें देखकर वह अपने गाईड से बोला, 'इसे रेगिस्तान कहते हो।' सूरज सर पर चढ़ आया। गर्मी बढ़ गई। विदेशी ने सोचा, कहीं आराम करना चाहिए। पर रेगिस्तान में कोई पेड़ या छायादार जगह कहां, बस चारों तरफ रेत ही रेत। गाईड बोला 'साहिब, यही रेगिस्तान है'।

सुनने में तो यह केवल कहानी है। पर बात कितनी सच है। जहां रेगिस्तान में एक ओर तकलीफें हैं, वहीं दूसरी ओर इन तकलीफों से जूझने के साधन। यहां पर रहने वाले समुदायों ने यहां के कठिन हालातों में जीने की कला सीख ली है।

हालात बदलने लगे

विकास ने जैसे ही यहां अपने पांव टिकाने शुरू किए, यहां की सदियों से चली आ रही पारंपरिक कलाओं ने दम तोड़ना शुरू कर दिया। लोगों ने पशु-पालन छोड़कर खेतीबाड़ी करना शुरू कर दिया। हाथ से बुने कपड़ों की जगह बाहर के रेशमी और ऊनी मशीन से बने कपड़े पहनने शुरू कर दिए। जूतियां छोड़कर रबड़ के जूते-चप्पल आ गए। ठीक उसी तरह जैसे घरों में मटकों की जगह फिल्टर आ गए।

इन सब का असर पड़ा यहां के लोगों के रोज़गार पर। जो लोग अभी तक हस्तकलाओं के माध्यम से अपना पेट-पालते थे, अब इस काम से महरूम हो गए। और कोई जगह होती तो लोग कोई दूसरा काम ढूंढ पाते। पर यह तो रेगिस्तान है।

उरमूल ने राह दिखाई

लोगों की इन परेशानियों में उनकी मदद की उरमूल नाम की एक संस्था ने। उरमूल का पूरा नाम है 'उरमूल रूरल हैल्थ रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट ट्रस्ट।' इसकी स्थापना 1984 में उत्तरी राजस्थान दुग्ध यूनियन लिमिटेड की एक शाखा के रूप में हुई थी। यह यूनियन किसानों का डेरी कोओपरेटिव था। इस ट्रस्ट का काम इसके संगठनों की मदद से छः सौ कार्यकर्त्ता संभालते हैं। इन कार्यकर्त्ताओं में औरतें और मर्द दोनों शामिल हैं। कार्यकर्त्ता मुख्य रूप से मेघवाल और नायक समुदाय के हैं, जो कि इस इलाके की सबसे गरीब और छोटी जातियां हैं।

फलोदी के बुनकर

उरमूल की छत्रछाया में काम करने वाला सबसे

मुख्य समूह है फलोदी के बुनकर। उरमूल में काम करने वाले समूहों में यह सबसे ज्यादा पुराने और पारंगत हैं। दलालों और बड़े व्यापारियों के शोषण से तंग आकर 1987 में कुछ लोग बीकानेर की लूणकरनसर तहसील में आकर बस गए। इन कारीगरों ने यहां के स्थानीय बुनकरों को अपनी यह कला सिखानी शुरू कर दी। बड़े पैमाने पर मिलजुल कर काम करने, प्रशिक्षण और नए-नए डिज़ाइनों को विकसित करके यह छोटा सा समूह एक बड़ा और सफल समूह बन गया।

1991 में उरमूल की मदद से इस समूह ने अपने आप को रजिस्टर कराया। जोधपुर जिले के फलोदी शहर में उनका हैड क्वार्टर बन गया। इस समूह की आमदनी साल भर में करीब पच्चीस लाख रुपये है। इसमें पच्चीस प्रतिशत फायदा है। उनकी आमदनी का पचास प्रतिशत बाहर देशों में माल भेजकर कमाया जाता है।

ये बुनकर कशीदाकारी से ज्यादातर सामान तैयार करते हैं। जैसे कि पारंपरिक पट्टू यानि गलीचे, शॉल, गद्दियों के कवर, लंहगे, चुनरी आदि बनाते हैं। यह हाथ के करघे का उपयोग करते हैं। इसके बावजूद भी करीब दो सौ कारीगर जैसलमेर और जोधपुर के गांवों में इस काम में जुटे हैं। इस काम से होने वाले मुनाफे का कुछ हिस्सा उरमूल कार्यकर्त्ताओं के बच्चों की शिक्षा पर खर्च किया जाता है।

औरतों के लिए

उरमूल ने औरतों को अपने पैरों पर खड़े होने में भी बहुत मदद की। बज्जू गांव में औरतें बड़ी तकलीफों में दिन गुज़ार रही थीं। इस इलाके में बिजली, पानी, स्वास्थ्य सुविधाएं, पढ़ाई आदि किसी भी चीज की सहूलियत नहीं थी। यहां पर रहने वाले लोग 1971 में पाकिस्तान की लड़ाई के समय बस गए शरणार्थी हैं। ये औरतें परंपरागत कश्मीरी कढ़ाई में निपुण हैं। अपनी कला को जीवित रखने के लिए इन्होंने उरमूल से मदद ली। आज ये औरतें कढ़ाई के घाघरे, गिलाफ, गद्दियों के कवर, बैग, दुपट्टे और दूसरी चीज़ें बनाती हैं।

लूणकरनसर के पीढ़े

इसी तरह उरमूल ने लूणकरनसर में औरतों को 'पीढ़े' बनाने के काम को बतौर रोजगार विकसित करने की सलाह दी। इन 'पीढ़ों' को बनाने के लिए बकरी और ऊंट के बालों का प्रयोग होता है। इन बालों को पक्के रंगों में रंगकर इसकी सुंदर कारीगरी से साज-सजावट करके 'पीढ़े' बनाए जाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में करीब पंद्रह औरतें लगती हैं।

इस काम की सभी प्रक्रियाएं औरतें खुद अपने आप करती हैं। चाहे वह रंगाई, बुनाई या लकड़ी के फ्रेम में बंधाई का काम हो। इस काम से हरेक औरत को पांच सौ रुपये माहवार की आमदनी होती है। हर पीढ़े पर दस रुपये का टैक्स लगता है, जिससे इकट्ठी की गई रकम उरमूल को दी जाती है। इन पैसों से उरमूल समूह की औरतों के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलाती है।

किसणासर की दरियां

उरमूल ने आजकल एक नई स्कीम शुरू की है। किसणासर में पांच औरतों ने दरियां बनाने का काम शुरू किया है। दरियों को बनाने के लिए वे तारा लूम का इस्तेमाल करती हैं। इन दरियों में वे खूबसूरत रंगों में चैक और धारीदार डिज़ाइन बनाती हैं। इन पांच औरतों ने आसपास के गांवों की पच्चीस औरतों को भी यह काम सिखाना शुरू कर

दिया है। ये औरतें महीने में करीब तीन हजार मीटर कपड़ा बुन लेती हैं। इस बुनाई से उन्हें काफी आमदनी हो जाती है। अच्छा काम चलता है तो मजदूरी पचहत्तर रुपए रोज तक पहुंच जाती है।

जीवनदान

उरमूल की इन योजनाओं से कई लुप्त होती कलाओं को फिर से जीवनदान मिल गया है। आसपास के गांवों में काफी लोग दरी बुनने, पीढ़े बनाने, कपड़ा बुनने आदि का काम सीखने के लिए आगे आ रहे हैं। यह इसलिए कि इससे उनकी आमदनी बढ़ती है। साथ ही यह काम सीखकर वे अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी जिंदगी संवार सकते हैं। उन्हें काम मांगने के लिए दर-दर भटकना भी नहीं पड़ेगा। □

मैं हूं

नहीं मैं
समाज का निरीह प्राणी
रसोई में दुबकी कोमल पूसी
ना ही मैं
मंगलसूत्र के बोझ से झुकी टहनी
मालिक के आंगन की मजबूर शाख
दफ्तर और फैक्टरी में सजा फूल
नहीं अब मैं
बेजान जीव
मर्दों ने जिसे दबाया कुचला
किया सलाखों में कैद
संस्कृति के नाम पर
ना ही अब मैं
व्यापार का सामान
या
रसोई, बिस्तर, सड़क पर पड़ी जिंदा लाश
मैं हूं
अपना राज्य छीनती इलम्मा
बैल के सींग पकड़े राजव्वा
मैं हूं
मीर मल्ला, अनकम्मा, सरस्वती, स्नेहलता, नागलक्ष्मी
मैं हूं
कटार जो छाती में उतर जाती दुश्मन की
मैं हूं
सर ऊंचा कर सदियों की चुप्पी तोड़ती
आधी नारी जाति
और हूं
जंगली जानवरों को चीरकर अपनी दुनिया बसाती
आदिमानवी

रत्नमाला

अनुवाद : **जुही**

पुलिस और हम

अपराध, कानून, सुरक्षा और पुलिस—इन सबका आपस में गहरा संबंध है। कानून हमारी सुरक्षा के लिए बने हैं। पुलिस हमारे अधिकारों की हिफाज़त के लिए। पर पुलिस की पूरी मदद लेने के लिए दो बातें ज़रूरी हैं—यह जानना कि पुलिस संबंधी अधिकार क्या हैं और पुलिस की कार्यवाही में सहयोग देना।

तो आइए देखें हमारे अधिकार क्या हैं?

गिरफ़्तारी

रमणी के घर एक दिन पुलिस आई। कहा उसके खिलाफ़ थाने में शिकायत दर्ज़ है। पुलिस उसे गिरफ़्तार करके ले गई। ऐसे में रमणी के क्या अधिकार हैं?

— गिरफ़्तार करते समय पुलिस बताएगी कि आपको क्यों गिरफ़्तार किया जा रहा है और आपका जुर्म क्या है?

— गिरफ़्तारी के समय आपसे ज़ोर-जबर्दस्ती करना ग़ैर-कानूनी है।

— कुछ खास अपराधों में आपको बिना वारंट गिरफ़्तार किया जा सकता है।

— आपको वकील से कानूनी सलाह लेने का हक़ है।

— आपके पहचान वालों और रिश्तेदारों को आपके साथ थाने जाने का हक़ है।

— गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति को चौबीस घंटे के अंदर कचहरी में पेश करना ज़रूरी है।

— बिना कचहरी की इज़ाज़त के किसी व्यक्ति को 24 घंटे से ज़्यादा हिरासत में रखना ग़ैर-कानूनी है।

— पुलिस आपको यह भी बताएगी कि आपके जुर्म की जमानत हो सकती है या नहीं।

हिरासत

नज़मा को नशीली दवा बेचने के इल्ज़ाम में थाने में हिरासत में रखा है। वहां पर कोई महिला पुलिस भी नहीं है। हिरासत में नज़मा के क्या हक़ होंगे?

— पुलिस हिरासत में मारपीट, छेड़खानी और किसी भी तरह की यातना देना संगीन जुर्म है।

— अगर पुलिस का ही कोई अधिकारी आपको सताए तो उसका नाम, पता, और हुलिया देकर उसके खिलाफ़ रपट लिखवाई जा सकती है।

— हिरासत में अगर आपके साथ मारपीट होती है तो आप डॉक्टरी जांच की मांग करें। घटना की शिकायत आप मजिस्ट्रेट से भी कर सकती हैं।

— महिला कैदियों को पुरुष कैदियों से अलग हिरासत में रखा जाएगा।

— अगर आप स्त्री हैं तो आपकी गिरफ़्तारी और हिरासत के समय महिला पुलिस मौजूद होनी चाहिए।

जमानत

ऊषा को चोरी के इल्ज़ाम में थाने में बंद कर दिया गया। उसका भाई उसकी जमानत देने आया। पर जमानत होगी कैसे?

जमानत का मतलब होता है कि मामले की सुनवाई के दौरान हिरासत में लिए व्यक्ति को कुछ बातों के लिए वचनबद्ध करके छोड़ा जा सकता है। जमानत के लिए:

— मजिस्ट्रेट को अर्जी देनी होगी। अर्जी पर किसी रिश्तेदार या जान पहचान वाले के दस्तखत कराकर जमानत मिल सकती है। जमानत करते समय कोई रकम नहीं दी जाएगी। इस रकम को जमानत पत्र में लिख दिया जाएगा। साथ में दो व्यक्तियों को गवाही देनी होगी कि ज़रूरत पड़ने पर आप कोर्ट या पुलिस में हाज़िर होंगे। पर अगर आपका जुर्म संगीन है या फिर आपकी जान को खतरा होने पर आपकी जमानत नामंज़ूर हो सकती है।

पूछताछ

श्यामा के पड़ोस में खून हो गया। पूछताछ के लिए पुलिस ने श्यामा को बुलाया। श्यामा ने रात के समय हवलदार के साथ जाने से मना किया। ऐसा क्यों?

— आपको पूछताछ के लिए बुलाने के लिए पुलिस को लिखित आदेश देना होगा।
— 15 साल से कम महिला या पुरुष को थाने नहीं बुलाया जा सकता।
— पूछताछ के समय आप किसी दोस्त या वकील की मदद ले सकती हैं।
— पूछताछ के लिए आपको थाने में नहीं रखा जा सकता।
— जबर्दस्ती कोई बयान देने को या फिर जवाब देने के लिए आपको मजबूर नहीं किया जा सकता।

तलाशी

राधा का कीमती हार चोरी हो गया। पुलिस ने रानी की, जो राधा की नौकरानी है, तलाशी लेनी चाही। ऐसे में रानी के क्या हक़ हैं?

— सिर्फ़ महिला पुलिस ही महिला के शरीर की तलाशी ले सकती है।
— पुलिस आपके दुकान या मकान की तलाशी ले सकती है। इसके लिए हमेशा वारंट की जरूरत नहीं होती।
— तलाशी के पहले, तलाशी लेने वालों की भी तलाशी ली जा सकती है।
— दो गवाहों का तलाशी के समय मौजूद होना जरूरी है।
— तलाशी का एक पंचनामा बनाया जाता है। इसकी एक प्रति आपको दी जानी चाहिए।

रपट

शैला जिस मुहल्ले में रहती है, उस मुहल्ले के कुछ मनचले लड़के उसे छेड़ते हैं। शैला इस मामले में पुलिस से क्या मदद ले सकती है।

— आप फौरन पुलिस में जाकर प्रथम सूचना रपट लिखवाएं।

— अगर पुलिस रपट लिखने से मना करे तो आप घटना पुलिस अधीक्षक या उपायुक्त को लिखें या बताएं। उनके ना सुनने पर लिखित जानकारी मजिस्ट्रेट को दें। मजिस्ट्रेट पुलिस को जांच का आदेश जारी करेंगे।

प्रथम सूचना रपट कैसे लिखवाएं

— प्रथम सूचना रपट लिखित या जुबानी हो सकती है।

— अगर आप लिख नहीं सकती तो पुलिस को जुबानी बताएं। पुलिस उसे लिखकर आपको पढ़कर सुनाएगी।

— रपट में सब ज़रूरी जानकारी होनी चाहिए जैसे आपका नाम, पता, अपराध का ब्यौरा, अपराधी का हुलिया, वारदात आदि।

— रपट लिखवाते समय आप किसी व्यक्ति को साथ ले जाएं।

— पूरी तसल्ली होने पर रपट पर दस्तखत करें और उसकी एक प्रति ले लें।

साभार : **मार्ग द्वारा प्रकाशित 'हमारे कानून'**

महिला पुलिस स्टेशन

हिंसा कोख से लेकर कब्र तक, किसी न किसी रूप में हमारी ज़िंदगी के साथ जुड़ी रहती है। हिंसा से डर लगता है। मन और शरीर को चोट पहुंचती है। दुख होता है। हिंसा के दो मुख्य रूप हैं— मानसिक और शारीरिक। हिंसा के कुछ ऐसे रूप हैं जो केवल औरतों के साथ होते हैं। यह हैं यौनिक हिंसा जैसे बलात्कार, मारपीट, दहेज हत्या आदि।

इस समस्या से निदान पाने और औरतों की मदद करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने देश का पहला महिला पुलिस स्टेशन स्थापित किया। उत्तर प्रदेश के आंकड़ों के हिसाब से बलात्कार, दहेज हत्या और छेड़खानी की वारदातों में सत्तर प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई है। इनमें काफी वारदातें पुलिस तक पहुंचती ही नहीं। ऐसा इसलिए क्योंकि मर्द पुलिस अफसर औरतों पर होने वाली हिंसा को पूरी संवेदनशीलता के साथ समझ नहीं पाते। इसलिए पूरी तरह औरतों द्वारा चलाया जाने वाला यह पुलिस स्टेशन शुरू किया गया है।

यह पुलिस स्टेशन लखनऊ की हजरतबल कोतवाली के पास है। लखनऊ के उन्नीस पुलिस थाने इसके साथ जुड़े हैं। इस स्टेशन की असिस्टेंट सुपरिटेंडेंट हैं सुश्री तनूजा श्रीवास्तव जो भारतीय पुलिस सेवा में अफसर हैं। इस थाने में बीस सब-इंस्पेक्टर, तीन हेड कांस्टेबल, 67 कांस्टेबल, दो ड्राइवर और पांच चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी हैं।

इस स्टेशन को शुरू करने का मुख्य उद्देश्य है औरतों पर होने वाले अत्याचारों को महिला पुलिस की मदद से सुलझाकर, अपराधियों को सज़ा दिलवाना।

इस थाने से प्रेरणा लेकर देश के दूसरे प्रदेशों में भी महिला पुलिस स्टेशन शुरू करने का फैसला किया गया है। □

पाठकों की कलम से

उठूंगी बनकर आंधी

उठूंगी बनकर आंधी
उखाड़ूंगी सदियों पुराने विचारों के पेड़
बढ़ूंगी तेज़ रफ्तार से आगे
करूंगी तहस-नहस
उन दकियानूसी रीति रिवाज़ों की इमारतों को
रोकते हैं जो मेरा विकास
और फिर बरसूंगी
बनकर शीतल पानी
होगा नया विश्व निर्माण
ऐसा विश्व जिसे होगा अहसास
मेरे वजूद, मेरे अधिकारों का
मेरे अहम्, मेरी इच्छाओं का।

—रश्मि स्वरूप जौहरी

मैं तो हरबार मिटी हूं, यह बताने के लिए
एक औरत है भला क्या, इस ज़माने के लिए
मेरा कोई धर्म नहीं, जाति नहीं, नाम नहीं
हर समय डर यही, हो जाऊं न बदनाम कहीं
जीवन क्या यही है, दुखों में डूब जाने के लिए
क्या नहीं जीवन हंसने, खिलखिलाने के लिए
चल पड़ी हूं मैं बहुत दूर मरुस्थल से कहीं
फंस जाऊं न किसी दलदल में फिर कहीं
प्रश्न बहुत से मचल रहे हैं जवाब पाने के लिए
कुछ उम्र चुरानी है मुस्काने के लिए।

विजय विश्वकर्मा

ज़िंदगी में मुश्किलों का सामना
करती हैं नारियां
दिल में दर्द हो तब भी
मुस्कराती हैं नारियां
यूं तो नारी शक्ति हैं पर
अबला कहलाती हैं नारियां
आज अपने हक़ के लिए
लड़ रही हैं नारियां
ज़िंदगी में कभी हार नहीं
मानती हैं नारियां

सुशील चंदर

जगत को राह दिखाएंगे
हम नया संसार बनाएंगे
देश हमारा धरती हमारी
हम धरती की नारी
एक करेंगे हम सबको
सीचेंगे जग की ममता को
नई समता की राह रचकर
समाज में नई चेतना लाएंगे।

नारी मुक्ति की ललकार

एवरेस्ट पर भारतीय महिलाएं

मई 1993 में एक पूर्ण महिला टीम एवरेस्ट—दुनिया की सबसे ऊंची चोटी—पर गई। संतोष यादव, कुंगा भूटिया और डिकी डोल्मा ने चोटी पर भारत व नेपाल का झंडा फहराया।

सुश्री बछेन्द्री पाल ने इस टीम का नेतृत्व किया। वह 1985 में चोटी पर पहुंचने वाली दुनिया की पहली महिला थीं। संतोष यादव 1992 व 1993 में दो बार चोटी पर पहुंचीं।

गए वे दिन

''शाप'' के वे दिन लद गए
जब अहल्या बिना कसूर
पत्थर हो जाया करती थी
अब तो फौलादी हैं
उनकी इच्छाशक्तियां
हर कारखाने की घड़घड़ाहट में
उनकी उर्जा है
व्यवस्था के संचालन में
का दिमाग लगा है
हर प्रतिस्पर्धा में
उनके लिए तमगे हैं
और हर फैसले में
उनकी सोच है
अब तो हर औरत के पीछे हैं
हजारों औरतें,
कोई बेसहारा नहीं है
जुल्मों के खिलाफ़
लड़ने के लिए
उनके पास है आत्मसम्मान
और एकता रूपी हथियार,
अब किसी बेकसूर औरत को
''शाप'' देने का अर्थ है
खुद पत्थर हो जाना।

सोहराब खान ''सबेरा''